नवसाक्षरोपयोगी

साहित्य निर्माण गोष्ठी

की

आख्या

[प्रादेशिक शिक्षा-विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना
की ४८ वीं उपयोजना के अन्तर्गत प्रकाशित]



शिक्षा विभाग
उत्तर प्रदेश

174389.

371-H
5

प्राक्कथन

आज का समय हमारे देश के लिये पुनर्नियोजन एवं पुनर्निर्माण का, उत्थान एवं विकास का समय है। हमने अपने देश में धर्म-निरपेक्ष कल्याणकारी लोकतंत्र की स्थापना की है। हमें उसे सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना है। किन्तु यह तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि उसकी आधारशिला ही सुदृढ़ एवं शक्तिशाली न हो। और यह आधारशिला है इस देश की वह समस्त जनता जिसके ऊपर कि आज राज्य-सरकारों का सुयोग्य निर्वाचन निर्भर है तथा समूचे राष्ट्र के मंगलमय स्वरूप का निर्धारण अवलम्बित है।

देशोत्थान की यात्रा में स्वतंत्रता-प्राप्ति के रूप में हम अपने एक लक्ष्य को तो प्राप्त कर आये हैं, किन्तु अभी अपने अभीष्ट तक पहुँचने के लिए हमें बहुत लम्बा रास्ता तय करना है। राजनीतिक दासता की बेड़ियों को हम काट चुके हैं, किन्तु आर्थिक बंधनों एवं सामाजिक कुरीतियों तथा जाति-गत भेदभावों की शृंखलाओं से अभी हमें अपने देश को मुक्त करना है। अपने इस महान् देश के अतीत के गौरव और उसकी गरिमा से प्रेरणा प्राप्त कर, उसकी स्वस्थ सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल वर्तमान और भविष्य के स्वरूप का निर्धारण करना है।

आज का युग विज्ञान का युग है, बुद्धि की प्रधानता का युग है। फलतः सभ्यता की दौड़ में आज संसार बुद्धि को लेकर जितना आगे बढ़ गया है, हृदय से वह उतना ही पीछे भी हट गया है। यही कारण है कि आज मनुष्य की प्रेम, करुणा, अहिंसा आदि की जो कोमल वृत्तियाँ हैं वे कुछ अधिक दब गई हैं, और उनके स्थान पर भय, आशंका, अनास्था आदि ने बल पकड़ लिया है तथा अधिकांशतः उन्हीं के ऊपर आज के इतिहास की रचना भी हो रही है।

यह स्थिति बड़ी भयावह है; अश्रेयस्कर है, किन्तु हमें इसका सामना करना है। संसार को इससे मुक्त कराने के प्रयास करने हैं। इसके लिये विश्व-समाज के नागरिक होने के नाते तो हमारा उत्तरदायित्व है ही, भारतवासी होने के नाते एक विशेष दायित्व है। क्योंकि हमारे इस देश की धरती ने ही संसार को हरिश्चन्द्र का सत्य दिया है, दधीचि का त्याग दिया है, बुद्ध की करुणा दी है और गांधी की अहिंसा दी है। हमें इन्हीं सद्वृत्तियों के

आधार पर विश्व के जीवन को एक नई दिशा देनी है, एक नई दृष्टि देनी है और एक नया दर्शन देना है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यह तभी संभव है जबकि हम स्वयं इन वृत्तियों की शिला पर अपने समाज का निर्माण करें। इसके लिए परमावश्यक है उस दिशा की ओर अग्रसर करने वाली जन-जन की उपयुक्त शिक्षा एवं उपयुक्त साहित्य। अतएव जिस प्रकार हम अपने बालक-बालिकाओं तथा युवक-युवतियों की शिक्षा-दीक्षा, उनके निमित्त साहित्य की आवश्यकता एवं उस साहित्य के व्यवस्थित निर्माण पर बल देते हैं, उसी प्रकार हमें अपने प्रौढ़ भाई-बहनों की शिक्षा-दीक्षा एवं उनके लिए उपयुक्त एवं व्यवस्थित विधि से साहित्य के सृजन की चिन्ता भी करनी होगी। तभी हम अपने अभीष्ठ की प्राप्ति कर सकेंगे।

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत हमारे प्रादेशिक शिक्षा विभाग द्वारा लेखकों को उपर्युक्त नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के निर्माण में प्रशिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से ही शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद में प्रदेश के शिक्षा प्रसाराधिकारी श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी के संचालन में डेढ़ माह की अवधि के लिए एक प्रादेशिक प्रौढ़ साहित्य-निर्माण गोष्ठी (Literary workshop for imparting training to the authors in the production of literature for Neo-literates) का आयोजन किया गया। इस आयोजन की आख्या भी शीघ्र ही पाठकों के हाथों में पहुँचेगी। मेरा विश्वास है कि प्रौढ़ साहित्य क्षेत्र के लेखकों तथा इस क्षेत्र के अन्य कार्यकर्त्ताओं को इससे एक नई दिशा मिलेगी, एक नई प्रेरणा प्राप्त होगी।

कमलापति त्रिपाठी
गृह, शिक्षा एवं सूचना मन्त्री
उत्तर प्रदेश।

दिनाङ्क १२-३-५८





पंडित कमलापति त्रिपाठी, गृह, शिक्षा एवं सूचन
उत्तर प्रदेश

दो शब्द

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत प्रदेशीय शिक्षा विभाग द्वारा लेखकों को नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के सृजन में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद में दिनांक जनवरी १२, १९५८ से फरवरी २६, १९५८ तक जिस प्रादेशिक नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-निर्माण-गोष्ठी (Literary workshop for imparting training to the authors in the production of literature for Neo-literates) का आयोजन किया गया, पाठकों के समक्ष उसकी आख्या प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है।

मुझे इस गोष्ठी के संचालक होने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ उसे मैं अपना परम सौभाग्य ही समझता हूँ। शिक्षा प्रसार विभाग में इस गोष्ठी का आयोजन हुआ, यह भी सर्वथा उचित ही था क्योंकि समाज-शिक्षा के क्षेत्र में प्रदेश का यह विभाग गत बीस वर्षों से निरंतर कार्य करता आ रहा है। इसी विभाग में १९५६ ई० में पन्द्रह दिन के लिए एक प्रौढ़-साहित्य सेमिनार भी हुई थी।

लेखकों को नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के निर्माण की दिशा में, इस रूप में यह आयोजन प्रदेश का सर्वथा पहला ही प्रयास था। इस नवीन प्रयास में मुझे अपने अग्रजों के आशीर्वाद एवं पथ-निर्देशन, साथियों के सहयोग एवं सहानुभूति तथा प्रतिनिधियों की लगन एवं कर्मठता के कारण जो सफलता प्राप्त हुई उससे बड़ा संतोष और बल मिला है।

'प्रौढ़ साहित्य' के सम्बन्ध में मैं इस स्थल पर अपने उस निवेदन को भी एक बार पुनः दुहरा देना चाहता हूँ जो मैंने हिन्दी के यशस्वी एवं युगप्रवर्तक कवि पं० सुमित्रानंदन पंत द्वारा गोष्ठी में दिए गए दीक्षान्त भाषण के अवसर पर व्यक्त किया था। वह यह कि 'प्रौढ़ साहित्य' साहित्य का एक अंग विशेष है और वह निरंतर विकसित होता जा रहा है; तथापि मेरी यह निश्चित धारणा है कि साहित्य के इस महत्वपूर्ण अंग की सफल पूर्ति के लिए तथा उसे 'साहित्य' की

कोटि में लाने के लिए 'साहित्यकारों' का सक्रिय योगदान नितान्त अपेक्षित है। अतएव मेरा अपने साहित्यकार साथियों से यह निवेदन है कि वे इस ओर कदम उठावें जिससे कि इस साहित्य में 'साहित्य' की प्राण-प्रतिष्ठा हो सके।

प्रदेश के विद्वान माननीय गृह, शिक्षा एवं सूचना मंत्री पंडित कमलापति त्रिपाठी ने इस गोष्ठी की आख्या का प्राक्कथन लिख कर हमें अनुगृहीत किया है। उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

प्रदेश के शिक्षा संचालक श्री चन्द्रमोहन नाथ चक ने अपनी बहुमूल्य उपस्थिति से गोष्ठी की जो श्रीवृद्धि की तथा जो हमारा पथ-प्रदर्शन किया, उसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

प्रदेश के संयुक्त शिक्षा संचालक, श्री बलवन्त सिंह स्याल के उद्घाटन भाषण एवं आशीर्वाद के साथ तो गोष्ठी का श्रीगणेश ही हुआ। अतएव उनके प्रति तो मैं विशेष रूप से अनुगृहीत हूँ ही।

हिन्दी के विख्यात युगप्रवर्त्तक कवि पं० सुमित्रानंदन पंत ने अपने दीक्षान्त भाषण से गोष्ठी को जो अमूल्य अनुभवरत्न प्रदान किए तथा साहित्यकारों का इस दिशा की ओर जो ध्यान आकृष्ट किया, उसके लिए मैं उनका ऋणी हूँ।

उन समस्त राज्य-सरकारों एवं व्यक्तिगत संस्थाओं के प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इस गोष्ठी के अवसर पर आयोजित प्रौढ़-साहित्य-प्रदर्शिनी के लिए अपनी-अपनी पुस्तकें भेज कर हमारी प्रदर्शनी को सफल बनाया।

डा० चन्द्रमोहन भाटिया, संचालक प्रशिक्षण, जिन्होंने गोष्ठी की व्यवस्था के सम्बन्ध में मेरा मार्ग-प्रदर्शन किया, उनका भी हृदय से कृतज्ञ हूँ।

उन समस्त विद्वान् वक्ताओं के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने बहुमूल्य विचारों एवं अनुभवों से हमारी गोष्ठी का पथ-प्रदर्शन किया।

अन्त में मैं सर्वश्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रोफेसर हिन्दी, सी० पी० आई०, रामजीलाल वधौतिया, लेखक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद, पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, प्रति उपविद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद, राजनारायण सक्सेना, सहायक शिक्षा प्रसाराधिकारी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद,

चन्द्रदत्त पसबोला, चलचित्रालयाध्यक्ष, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद, कमलाशंकर सिंह, कलाकार, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद तथा अन्य समस्त सहयोगियों के प्रति भी मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अथक परिश्रम कर इस कार्य में मेरा हाथ बटाया है।

गोष्ठी की आख्या पाठकों के समक्ष है। मुझे आशा ही नहीं वरन् पूर्ण विश्वास है कि प्रौढ़ साहित्य-निर्माण में अभिरुचि रखने वाले समस्त लेखकों एवं अन्य साहित्यकारों को इससे प्रेरणा मिलेगी तथा उन्हें इसमें काफी लाभप्रद सामग्री भी प्राप्त होगी।

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

दिनांक १-३-५८

गोष्ठी संचालक

एवं

शिक्षा प्रसार अधिकारी, उत्तर प्रदेश

विषय-सूची

नवसाक्षरोपयोगी

साहित्य निर्माण गोष्ठी

परिचय और उद्देश्य

नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य की महत्ता एवं आवश्यकता आज निर्विवाद रूप से सिद्ध है। आज का युग हमारे राष्ट्र के पुनर्जागरण, पुनर्नियोजन एवं पुनर्निर्माण का युग है। हम अपने देश में समाजवादी स्वरूप पर आधारित एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिए प्रतिश्रुत हैं। किन्तु हमारा यह पवित्र संकल्प तब तक पूरा न हो सकेगा जब तक कि हम उस राज्य की आधारशिला को ही सशक्त एवं सुदृढ़ न बना लें। यह आधारशिला है—हमारे देश की जनता, हमारे वे समस्त प्रौढ़ पुरुष और स्त्रियाँ जिनके ऊपर आज हमारी सरकारों का निर्वाचन निर्भर है। हमें उन्हें सशक्त, सक्षम, योग्य एवं जागरूक बनाना होगा, उनमें विश्वबंधुत्व की भावनाओं का समावेश कर देश के ही नहीं वरन् विश्व के सफल, सहयोगी एवं उत्तरदायी नागरिक बनने की क्षमता उत्पन्न करनी होगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सबके लिए परमावश्यक है—उपयुक्त प्रौढ़-शिक्षा और उपयुक्त प्रौढ़-साहित्य।

प्रौढ़-शिक्षा एवं प्रौढ़-साहित्य की उपर्युक्त आवश्यकता एवं महत्ता को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों की ओर से निरंतर ही इस दिशा के विकास के लिए अथक प्रयास होते रहे हैं। प्रस्तुत नवसाक्षर प्रौढ़ साहित्य निर्माण गोष्ठी (वर्कशाप) भी उन्हीं सत्प्रयासों की श्रृङ्खला की एक अविच्छिन्न कड़ी है। यह गोष्ठी केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा दिनांक १२ जनवरी, १९५८ से २६ फरवरी, १९५८ तक डेढ़ माह की अवधि के लिए शिक्षा प्रसार

विभाग, इलाहाबाद में आयोजित की गयी। गोष्ठी का उद्देश्य था—लेखकों को नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण में प्रशिक्षण प्रदान करना।

गोष्ठी का संचालन उत्तर प्रदेश के शिक्षा प्रसाराधिकारी श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी ने किया। सर्वश्री ब्रजभूषण शर्मा, हिन्दी प्रोफेसर, सेन्ट्रल पैडागाँजीकल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद; रामजीलाल बधौतिया, लेखक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद तथा केन्द्रीय सरकार से नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण में दीक्षाप्राप्त श्री पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, प्रति उपविद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद इस कार्य में उनके सहयोगी थे।

प्रतिनिधि

गोष्ठी में भाग लेने के लिए बीस प्रतिनिधियों की संख्या निर्धारित थी। इसके लिए विभिन्न राजकीय एवं सहायता प्राप्त शिक्षा संस्थाओं से, निरीक्षक-वर्ग से तथा विभाग के अतिरिक्त अन्य बाहर के इच्छुक लेखकों से प्रार्थना-पत्र आमंत्रित किए गए थे। आवेदकों में से गोष्ठी में भाग लेने के लिए बीस प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया गया। ये निर्वाचित प्रतिनिधि अधिकांशतः लेखक थे तथा कुछ ऐसे भी जिन्हें समाज शिक्षा के क्षेत्र का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त था। एक प्रतिनिधि के अस्वस्थ हो जाने के कारण गोष्ठी में केवल १९ प्रतिनिधियों ने भाग लिया[१]।

उद्घाटन

दिनांक १३-१-५८ को श्री बलवंतसिंह स्याल, संयुक्त शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश द्वारा साहित्यकारों, शिक्षाशास्त्रियों एवं पत्रकारों के बीच गोष्ठी का उद्घाटन सम्पन्न हुआ[२]। अपने उद्घाटन-भाषण में संयुक्त शिक्षा संचालक महोदय ने देश के विकास एवं उत्थान में नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण की आवश्यकता एवं महत्ता पर प्रकाश डालते हुए प्रौढ़ शिक्षा एवं प्रौढ़ साहित्य की कुछ अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर भी प्रतिनिधियों एवं गोष्ठी-संचालकों का ध्यान आकृष्ट किया।

इस सम्बन्ध में, सारांशतः, आपने कहा कि यद्यपि प्रौढ़ शिक्षा के

१—प्रतिनिधियों की सूची देखें कृपया परिशिष्ट...ख

२—उद्घाटन भाषण के लिए देखें कृपया परिशिष्ट...क

देशों की अपेक्षा प्रौढ़ शिक्षा के प्रतिशत का औसत हमारे यहाँ कम है। आपने इस प्रसंग में इस बात पर भी बल दिया कि हम यह सोचें कि हम अपने प्रौढ़ भाई-बहिनों को पढ़ने के लिए किस प्रकार प्रेरित कर सकते हैं। आपने कहा कि प्रौढ़ शिक्षा-पद्धति चाहे जो हो, यदि प्रौढ़ एक बार जिज्ञासु के रूप में हमारे पास आ जाता है, तो फिर उसका मन पढ़ने-लिखने में अवश्य लगेगा। आपने इस बात पर भी बल दिया कि बाल-शिक्षा के विकास के लिए प्रौढ़-शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है।

आपने इस प्रकार के प्रशिक्षण के उपयोग की आवश्यकता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि यदि इसे आगे चल कर काम में न लाया गया, तो फिर यह सारा प्रयास व्यर्थ हो जायगा।

मुख्य अतिथि महोदय ने अन्त में श्रोताओं का ध्यान इस बात की ओर भी आकृष्ट किया कि राज्य-सरकार के अन्तर्गत कार्य करने वाले लेखकों को कौन-कौन सी सुविधाएँ प्रदान की जायँ जिससे कि उनकी प्रतिभा का सदुपयोग हो सके।

मुख्य अतिथि के उद्घाटन-भाषण के पूर्व उनका तथा गोष्ठी के प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए गोष्ठी के संचालक श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी ने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया[१]।

आपने मुख्य अतिथि के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हुए अपने स्वागत-भाषण में नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की आवश्यकता एवं महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बताया कि देश के पुनर्नियोजन तथा पुनर्निर्माण के लिए, विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सक्रिय जन-सहयोग प्राप्त करने के लिये, प्रौढ़ों के आर्थिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन-स्तर को उन्नत बनाने के लिए, उनके द्वारा प्राप्त साक्षरता को स्थिर रखने के लिए और जो आज क्षीण प्रायः होती जा रही हैं उन कथा, भजन आदि की प्राचीन प्रभावपूर्ण मौखिक प्रणालियों के रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए इस प्रकार के साहित्य का निर्माण बहुत ही आवश्यक है।

श्री माहेश्वरी ने इस साहित्य के निर्माण के सम्बन्ध में अपना मत

१—स्वागत-भाषण के लिए देखें कृपया परिशिष्ट...ख

प्रकट करते हुए बताया कि यों तो इससे सम्बन्धित कई प्रश्न हैं, किन्तु इनमें से प्रमुख हैं (१) भाषा और शैली, (२) विषय निर्वाचन और (३) पुस्तक का वाह्य एवं आंतरिक रूप।

उद्घाटन-समारोह का आरम्भ राजकीय उच्चतर कन्या माध्यमिक विद्यालय, प्रयाग की बालिकाओं द्वारा प्रस्तुत सरस्वती-वंदना के साथ हुआ।

श्रीमती राजेन्द्री व्यास, संगीत अध्यापिका, राजकीय उच्चतर कन्या माध्यमिक विद्यालय ने एक लोकगीत प्रस्तुत किया।

श्री राजनारायण सक्सेना, सहायक शिक्षा प्रसाराधिकारी द्वारा अतिथियों को दिए गए धन्यवाद के साथ समारोह समाप्त हुआ[१]।

कार्य एवं कार्यप्रणाली

कार्य की दृष्टि से गोष्ठी की डेढ़ माह की सम्पूर्ण अवधि को मोटे तौर पर तीन भागों—आरम्भिक अवधि, माध्यमिक अवधि तथा अंतिम अवधि—में विभाजित कर दिया गया। आरम्भिक अवधि में सर्व प्रथम सदस्यों को नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-सृजन के नियमों एवं सिद्धान्तों से अवगत कराया गया। (इन नियमों एवं सिद्धान्तों का विस्तृत विवरण अगले अध्याय में दिया गया है।) उन्हें इस सम्बन्ध में इस साहित्य के सृजन के उद्देश्य, आवश्यकताएँ, प्रौढ़-मनोविज्ञान, नवसाक्षरों से अभिप्राय, परीक्षण एवं शोध-कार्य की विधियों आदि से परिचित कराया गया।

इसी अवधि में समस्त सदस्यों को तीन टोलियों में विभाजित भी कर दिया गया[२]। प्रथम टोली का निर्देशन गोष्ठी-संचालक ने, द्वितीय टोली का निर्देशन श्री पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी ने तथा तृतीय टोली का निर्देशन श्री रामजीलाल बधौतिया ने किया। प्रथम टोली ने नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की भाषा एवं शैली पर कार्य किया, दूसरी ने अवस्था, लिंग, क्षेत्र आदि को ध्यान में रखते हुए विषय-निर्वाचन पर तथा तीसरी ने पुस्तकों के वाह्य एवं आंतरिक स्वरूप पर। तीनों टोलियों के विचार, निर्णय एवं अनुभव कर्णधार समिति (स्टीयरिंग कमेटी) के माध्यम से समय-समय पर गोष्ठी की सम्मिलित बैठक में

१—धन्यवाद भाषण के लिए देखें कृपया परिशिष्ट...ग

२—टोलियों के लिए देखें कृपया परिशिष्ट...ञ

प्रस्तुत किये गए तथा उन पर सामूहिक रूप से विचार-विमर्श कर उन्हें अंतिम स्वरूप प्रदान किया गया।

गोष्ठी की आरम्भिक अवधि में गोष्ठी के सदस्य अपने निर्देशकों के साथ कुछ दिन स्वयं देहातों में जाकर रहे तथा उन्होंने प्रौढ़ों से प्रत्यक्ष बातचीत कर यथासम्भव प्रायोगिक शोध-कार्य भी किया। इस कार्य से गोष्ठी को भाषा, शैली, विषय तथा पुस्तकों के स्वरूप के निर्धारण के सम्बन्ध में बड़ी सहायता एवं व्यावहारिक पृष्ठभूमि प्राप्त हुई। गोष्ठी का यह एक सर्वथा मौलिक प्रयास था।

गोष्ठी ने नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-सृजन के लिए एक आधारभूत शब्दावली तैयार करने का प्रयास भी किया, किन्तु इस कार्य के लिए जितना समय अपेक्षित था, उसका गोष्ठी के पास अभाव था। फिर भी इस दिशा में यथासम्भव जो कार्य किया गया उससे सदस्यों को अपने कार्य में बड़ी सहायता मिली।

सदस्यों ने गोष्ठी में नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य-सृजन के सिद्धान्तों एवं नियमों में जो प्रशिक्षण प्राप्त किया उसको ध्यान में रखते हुए उन नियमों एवं सिद्धान्तों के व्यावहारिक अभ्यास के लिए गोष्ठी की बीच की अवधि में नवसाक्षरोपयोगी एक-एक पुस्तक रचने का पृथक्-पृथक् प्रयास भी किया[1]।

इन प्रयासों की पहले टोलीनायकों तथा सदस्यों की छोटी-छोटी टुकड़ियों ने जाँच की। फिर पुस्तकों की पांडुलिपियों का पहला प्रारूप तैयार हो जाने के पश्चात्, गोष्ठी की अंतिम अवधि में, देहाती क्षेत्रों में जाकर स्वयं सदस्यों द्वारा उनका प्रौढ़ों पर परीक्षण किया गया एवं उस परीक्षण के अनुसार पांडुलिपियों में पुनः आवश्यक संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किए गए। परीक्षण के इस अवसर पर गोष्ठी के कुछ सदस्यों एवं प्रौढ़ों के बीच हुई वार्ता तथा प्रश्नोत्तरों को टेप-रिकार्डर द्वारा गोष्ठी के लाभार्थ रिकार्ड भी किया गया।

गोष्ठी की सम्पूर्ण अवधि के बीच उसके सदस्यों के लाभार्थ प्रौढ़-शिक्षा एवं प्रौढ़ साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले निम्नांकित विभिन्न विशेषज्ञों एवं अन्य शिक्षाशास्त्रियों की एक व्याख्यान-माला का

१—विषयों के लिए देखें कृपया परिशिष्ट...छ

आयोजन भी किया गया। इन समस्त विद्वानों के व्याख्यानों के सारांश अन्त में दे दिए गए हैं[1]।

१—श्री चन्द्रमोहन नाथ चक, शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश।

२—श्रीमती डाक्टर मिसेज फिशर, संचालिका, साक्षरता निकेतन लखनऊ।

३—डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग।

४—श्री विश्वम्भरनाथ पान्डेय, भूतपूर्व अध्यक्ष, नगरपालिका प्रयाग।

५—डा० सीतावर शरण, आचार्य, सी० पी० आई०, इलाहाबाद।

६—डा० श्यामनारायण मेहरोत्रा, संचालक, मनोविज्ञान केन्द्र, इलाहाबाद।

७—श्री प्रभाकान्त शुक्ल, जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद।

८—श्री ज्योति प्रसाद 'निर्मल', प्रयाग।

९—श्री श्रीकृष्णदास, सम्पादक, साहित्य विभाग, अमृत पत्रिका, प्रयाग।

१०—श्री बंशीधर श्रीवास्तव, आचार्य, राजकीय जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद।

११—श्री कस्तूरचंद गुप्त, सम्पादक, 'उजाला', साक्षरता निकेतन, लखनऊ।

गोष्ठी का परम सौभाग्य था कि उसमें दिनांक १८-१-५८ को श्री चन्द्रमोहन नाथ चक, शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश पधारे। शिक्षा संचालक महोदय ने गोष्ठी में अपना व्याख्यान तो दिया ही, उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर स्वयं गोष्ठी के विचार-विमर्श में सक्रिय भाग भी लिया।

गोष्ठी की सम्पूर्ण अवधि के लिए नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य की एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया। इस प्रदर्शिनी में भारत के विभिन्न राज्यों एवं व्यक्तिगत संस्थाओं से प्राप्त भिन्न-भिन्न भाषाओं में निर्मित नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की लगभग १५००

१—कृपया देखें परिशिष्ट...च

पुस्तकों का एक सुन्दर संकलन एकत्र किया गया। इस प्रदर्शिनी से गोष्ठी के सदस्यों को बड़ी सहायता एवं जानकारी प्राप्त हुई।

गोष्ठी के सदस्यों के लाभार्थ ऐसे शिक्षात्मक चलचित्रों के प्रद-र्शन भी आयोजित किये गये जिनसे उन्हें विषय-निर्वाचन में तो पर्याप्त रूप से सहायता मिली ही, विषय-वस्तु की जानकारी भी हुई।

गोष्ठी की कार्यविधि में ऐसे सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयो-जित किए गए जिनसे सदस्यों को उनके कार्य की गम्भीरता में समय-समय पर मनोरंजक पृष्ठभूमि भी मिलती गयी। ऐसे कार्यक्रमों में दिनांक १४-२-५८ को एक काव्य-समारोह का आयोजन बड़ा ही सफल एवं उल्लेखनीय आयोजन रहा।

दिनांक २५-२-५८ को हिन्दी के यशस्वी युगप्रवर्तक कवि पं० सुमित्रानंदन पंत के कर कमलों द्वारा गोष्ठी के सदस्यों को उनकी दीक्षा की समाप्ति पर प्रमाण-पत्र वितरित किए गये। कविवर पंत ने अपने दीक्षान्त भाषण[1] में प्रौढ़ साहित्य की आवश्यकता एवं उसकी विशेष दिशाओं की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा कि आज का युग पूर्व युग से भिन्न है। बीसवीं शताब्दि का अर्द्ध भाग दासता में व्यतीत हुआ। अब स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् निर्माण का प्रश्न हमारे सामने है। प्रौढ़ साहित्य के लेखकों का कार्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि कल्पनाजीवी लेखकों का। अतः प्रौढ़ साहित्य के लेखकों का परम कर्तव्य है कि वे युग की प्रगति के अनुकूल ऐसे साहित्य का सृजन करें जिससे मनुष्य और मनुष्य के बीच की खाई दूर हो, इस धरती पर विश्वबन्धुत्व से पूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति प्रतिष्ठित हो तथा अनेकता में एकरूपता का समावेश हो।

पन्त जी ने आगे कहा कि हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि गाँव वालों में हृदय-तत्व अधिक है तो नागरिकों में बौद्धिक तत्व की प्रधानता है, नागरिकों ने विज्ञान दिया है, किन्तु गाँव वाले उन्हें पालते रहे हैं। यह सत्य है कि गाँव वाले बाहर से कुरूप हैं किन्तु वे हृदय से उज्ज्वल हैं। अतः प्रौढ़ साहित्य लेखकों को ऐसे साहित्य का निर्माण करना है कि गाँव वाले बाह्य सौन्दर्य के प्रति भी जागरूक हों। उनमें

१—कृपया देखें परिशिष्ट संख्या......घ

ऐसे गुणों का समावेश हो कि उनके जीवन का धरातल उच्च हो जाय तथा वे मानव सत्य को पहचाने।

अन्त में पन्त जी ने गोष्ठी में प्रौढ़ साहित्य से सम्बन्धित निश्चित हुए सिद्धान्तों तथा किये गये कार्यों की सराहना करते हुए कहा कि यह बड़ा ही महत्व का कार्य हुआ है।

दिनांक २६-२-५८ को कतिपय अन्य आवश्यक कार्यवाहियों के पश्चात् अपराह्न में गोष्ठी का विसर्जन हुआ।

गोष्ठी के लिए ग्यारह हजार रुपये (११,००० रु०) का प्राविधान था।



श्री चन्द्रमोहन नाथ चक, शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश

नवसाक्षर

समाज शिक्षा-साहित्य के क्षेत्र में 'नवसाक्षरों' से हमारा तात्पर्य 'नवसाक्षर प्रौढ़ों' से है। ये प्रौढ़ कौन हैं, इसे हमें सर्व प्रथम स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। तभी हम 'नवसाक्षर प्रौढ़ों' की भलीभाँति व्याख्या कर सकेंगे।

(१) 'प्रौढ़' शब्द को हमें किसी संकुचित अर्थ में नहीं समझना चाहिए। समाज शिक्षा के क्षेत्र में प्रौढ़ों से हमारा तात्पर्य उन पुरुषों तथा स्त्रियों से है जो जीवन का काफी भाग व्यतीत कर चुके हैं, जो अनुभव-प्राप्त हैं तथा जिनकी बुद्धि प्रौढ़ है, किन्तु दुर्भाग्य से जिन्हें परिस्थितियोंवश अपने जीवन के आरम्भिक समय में किसी पाठशाला में पढ़ना-लिखना सीखने का सुअवसर ही प्राप्त नहीं हुआ और यदि हुआ भी, तो वे अपनी प्राप्त साक्षरता को परिस्थितियोंवश अथवा उपयुक्त साधनों के अभाव में स्थिर नहीं रख सके और कालान्तर से पुनः निरक्षरता के अंधकार में चले गये। हाँ, इनमें से कुछ ऐसे भी प्रौढ़ रहे जो येन-केन-प्रकारेण प्राप्त साधनों एवं सुविधाओं के सहारे अपनी साक्षरता को कायम रक्खे रहे।

(२) इनमें से पहले प्रकार के प्रौढ़ों को हम 'निरक्षर' अथवा 'अपढ़' प्रौढ़ों की श्रेणी में सम्मिलित करते हैं तथा दूसरे प्रकार के प्रौढ़ों को 'अर्द्ध साक्षर' प्रौढ़ों की श्रेणी में।

(३) सामान्यतया भारतवर्ष के प्रौढ़ों को निरक्षर, अपढ़ अथवा अर्द्ध साक्षर होते हुए भी अशिक्षित नहीं कहा जा सकता। उनके अपने अनुभव हैं, मान्यताएँ हैं, धारणाएँ हैं, सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं। यहाँ का एक औसत गाँववासी भारतीय भक्ति-पद्धति, भारतीय-दर्शन एवं भारतीय-संस्कृति के मूल तत्वों से काफी परिचित मिलेगा। परिचित ही नहीं, वह उनके अनुसार अपने जीवन को व्यतीत भी करता है।

(४) प्रौढ़ों को उनकी मानसिक प्रवृत्तियों, बौद्धिक स्तर, रुचियों एवं रुझानों की विशेषताओं के आधार पर निम्नांकित वयःक्रम में श्रेणीबद्ध किया जा सकता है :—

क—१२ वर्ष से १८ वर्ष तक के प्रौढ़

ख—१९ वर्ष से ३५ वर्ष तक के प्रौढ़

ग—३५ वर्ष से ऊपर के प्रौढ़

विदेशों में सामान्यतया चौदह वर्ष की अवस्था के ऊपर के व्यक्तियों को प्रौढ़ों की श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है। किन्तु भारतवर्ष में सामाजिक शिक्षा की दृष्टि से बारह वर्ष की अवस्था के बाद ही प्रौढ़ों की श्रेणी आरम्भ हो जाती है। इसका कारण है और वह यह कि हमारे देश में बारह वर्ष की अवस्था तक प्राथमिक (प्राइमरी) शिक्षा की समाप्ति हो जाती है। बहुत से बालक ऐसे होते हैं जो इस स्तर तक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद अपनी आर्थिक अथवा सामाजिक परिस्थितियों-वश आगे नहीं पढ़ पाते। उनकी शिक्षा वहीं तक सीमित रह जाती है। अतएव अपने देश में प्रौढ़ों की गणना उसी आयु से की जाती है।

इस श्रेणी विभाजन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि ये प्रौढ़ों के कोई नितान्त अलग-अलग विभाग हैं। इसका यह भी अभिप्राय नहीं है कि (क) प्रथम प्रकार के प्रौढ़ों में दूसरे प्रकार के प्रौढ़ों की प्रवृत्तियाँ नहीं मिलेंगी (ख) दूसरे प्रकार के प्रौढ़ों में तीसरे प्रकार की प्रवृत्तियाँ नहीं मिलेंगी, (ग) तीसरे प्रकार के प्रौढ़ों में दूसरे प्रकार के प्रौढ़ों की प्रवृत्तियाँ नहीं मिलेंगी (घ) दूसरे प्रकार के प्रौढ़ों में पहले प्रकार के प्रौढ़ों की प्रवृत्तियाँ नहीं मिलेंगी। यह विभाजन, सामान्य रूप से, इन अवस्थाओं के क्रम में जो प्रौढ़ों की कतिपय विशेष प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, उनके आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

सामान्यतया यह देखा गया है कि १२ वर्ष से लेकर १८ या २० वर्ष तक के व्यक्तियों की मानसिक प्रवृत्तियाँ, बौद्धिक स्तर, स्वभाव एवं रुचियाँ १८ या २० वर्ष से लेकर ३५ वर्ष तक के व्यक्तियों की तथा ३५ वर्ष से ऊपर वाले व्यक्तियों की मानसिक प्रवृत्तियाँ, बौद्धिक स्तर, रुचियों एवं रुझानों से भिन्न होती हैं। प्रौढ़ मनोविज्ञान के अनुसार १८ या २० वर्ष की आयु तक प्रतिभा का विकास होता रहता है, ३५ वर्ष तक प्रतिभा के विकास में अवरोध आ जाती है तथा उसके पश्चात् स्थिरता (रिजिडिटी) का समावेश होने लगता है। प्रौढ़ साहित्य के लेखकों को अपनी रचनाएँ करते समय इन तथ्यों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिए जिससे कि जो साहित्य उनके द्वारा निर्मित हो वह वैज्ञानिक ही नहीं, वरन् मनोवैज्ञानिक आधारों पर भी आधारित रहे।

यहाँ तक तो हुआ 'प्रौढ़' का विवेचन। अब हमें 'नवसाक्षर' से हमारा क्या अभिप्राय है, इस पर विचार करना है। जैसा कि 'नवसाक्षर' शब्द से स्वतः ही स्पष्ट है, इसका अर्थ है 'नई साक्षरता प्राप्त व्यक्ति' अर्थात् वे अपढ़ या निरक्षर प्रौढ़ जिन्होंने पढ़ने-लिखने की थोड़ी बहुत योग्यता प्राप्त कर ली है। प्रचलित भाषा में इन्हें 'नौसिखुए' कह सकते हैं। जब हम नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-रचना की बात करते हैं, तो हमारा तात्पर्य इन्हीं नवसाक्षरों से होता है। हाँ, जिन प्रौढ़ों को हम ऊपर अर्द्धसाक्षर कह आये हैं अर्थात् वे लोग जिन्होंने अपने आरम्भिक जीवन-काल में प्राप्त साक्षरता को थोड़ा-बहुत स्थिर रखने का प्रयास किया है और उसे स्थिर रक्खा है, उन्हें भी हम समाज शिक्षा साहित्य-निर्माण की दृष्टि से 'नवसाक्षरों' की श्रेणी में सम्मिलित करते हैं।

इस प्रकार नवसाक्षरों की श्रेणी में वे समस्त प्रौढ़ आ जाते हैं जिन्होंने:—

(१) नितान्त नये सिरे से पढ़ने-लिखने का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया है और जिन्हें अब अपनी साक्षरता को स्थिर रखने के लिए तथा उसे आगे बढ़ाने के लिए उपयुक्त साहित्य की आवश्यकता है।

(२) अपने जीवन के आरम्भिक काल में जो कुछ थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना सीखा था तथा यथालभ्य साहित्य के सहारे अपनी उस पढ़ाई-लिखाई को, प्राप्त साक्षरता को, बनाये रक्खा है और जिन्हें हम ऊपर 'अर्द्ध साक्षर' के नाम से अभिहित कर आए हैं।

उपर्युक्त समस्त प्रकार के प्रौढ़ों को हम उनके निमित्त साहित्य-निर्माण की सुविधा की दृष्टि से प्राप्त साक्षरता सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) उस श्रेणी के प्रौढ़ जो बिल्कुल ही पढ़ना-लिखना नहीं जानते तथा जिनके लिए प्रारम्भिक प्रौढ़ पोथियों का पढ़ना आवश्यक है।

(२) उस श्रेणी के प्रौढ़ जो साधारण शब्दों से आरम्भ कर कुछ शब्दों तथा वाक्यों को पढ़-लिख सकते हैं।

(३) उस श्रेणी के प्रौढ़ जो साधारण गद्य तथा पद्य के क्रमिक वर्णन वाले पाठों को पढ़-लिख सकते हैं।

(४) उस श्रेणी के प्रौढ़ जो साहित्य के विभिन्न अंगों के रूपों में लिखी गयी पुस्तकों को पढ़ने की योग्यता ही प्राप्त नहीं कर लेते वरन उन्हें पढ़कर उनसे आनन्द भी प्राप्त कर सकते हैं तथा उनके द्वारा अपने ज्ञान में वृद्धि करने की क्षमता भी रखते हैं।

उपर्युक्त श्रेणियों में से शीर्षक संख्या २, ३ तथा ४ के अन्तर्गत आने वाले प्रौढ़ों को ही हम 'नवसाक्षर' कहते हैं तथा उनके निमित्त साहित्य-रचना की दृष्टि से हम उन्हें क्रमशः प्रथम श्रेणी के नवसाक्षर, द्वितीय श्रेणी के नवसाक्षर तथा तृतीय श्रेणी के नवसाक्षरों में भी विभाजित कर सकते हैं।

नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य निर्माण सम्बन्धी सामान्य नियम एवं सिद्धान्त

क—भाषा और शैली

प्रौढ़-साहित्य-निर्माण के लिए खड़ी बोली का ही प्रयोग होना चाहिए, किन्तु नाटकों एवं सम्वादों में पात्रों के अनुकूल क्षेत्रीय बोलियों का भी उपयोग स्वाभाविकता की रक्षा के हेतु किया जाना उपयुक्त है। लोकगीत क्षेत्रीय बोलियों में ही रहेंगे।

शब्द :—

उपयुक्त शब्दों का चयन प्रत्येक प्रकार के साहित्य-सृजन के लिए परमावश्यक है। नवसाक्षरों के लिए साहित्य-निर्माण करते समय उपयुक्त शब्दों के चयन की समस्या एक प्रमुख समस्या के रूप में हमारे सामने उपस्थित होती है। वास्तव में नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की सफलता उपयुक्त शब्दों के चयन पर ही विशेष रूप से निर्भर है। किन्तु कौन से शब्द नवसाक्षरों के लिए उपयुक्त हैं, इसकी कोई तालिका न होने की दशा में लेखक को शब्द-चयन एवं प्रयोग सम्बन्धी निम्नांकित बातों को ध्यान में रखते हुए बहुत कुछ अपनी विवेक-बुद्धि पर आश्रित रहना है।

(१) शब्द ऐसे ही प्रयुक्त किये जाने चाहिए जो सरल, परिचित अधिकाधिक प्रचलित तथा प्रौढ़ों के मानसिक स्तर एवं उनके विषय और वातावरण के अनुकूल हों।

(२) यथासम्भव, पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग न किया जाय और यदि उनका प्रयोग करना ही पड़े तो सर्वप्रथम जिस स्थान पर उनका प्रयोग हो, वहीं उनका अर्थ भी सरल भाषा में स्पष्ट कर दिया जाए।

(३) तत्सम, संयुक्ताक्षर एवं संधियुक्त शब्दों तथा सामासिक पदों का प्रयोग कम से कम ही किया जाना चाहिए।

(४) नवसाक्षरों के शब्द-भांडार की अभिवृद्धि हेतु नवीन शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना होगा कि 'नवीन' शब्द सापेक्ष है। यदि नवसाक्षरों के लिए पाठ्य-पुस्तकों की माला लिखी जाय तो उसमें 'नवीन' शब्द का अर्थ संगत हो सकता है, अन्यथा कौन से शब्द नवीन हैं और किनकी अपेक्षा, यह विवादग्रस्त है।

तथापि अन्य नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-निर्माण में भी लेखक कुछ ऐसे शब्दों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकता है जिनकी जानकारी की आशा हम पाठकों से नहीं करते। परन्तु ऐसे प्रयुक्त नवीन शब्दों की संख्या एक पृष्ठ पर थोड़ी ही होनी चाहिए।

(५) प्रयुक्त शब्दों की, और विशेषकर नवीन शब्दों की पुनरावृत्ति आवश्यक है। परन्तु पुनरावृत्ति उतनी ही की जाय जो अस्वाभाविक और पाठक के लिए अरुचिकर एवं अनावश्यक न हो। यह पुनरावृत्ति आरम्भ के पृष्ठों में आगे के पृष्ठों की अपेक्षा अधिक होगी।

(६) प्रचलित विदेशी शब्दों का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार वांछनीय है।

(७) आधारभूत खड़ी बोली को अधिकाधिक समृद्ध एवं व्यापक बनाने तथा उसमें निर्मित नवसाक्षरोपयोगी साहित्य को अन्य क्षेत्रीय बोलियों के अधिकाधिक समीप लाने के हेतु हिन्दी की उन बोलियों के बहुप्रचलित शब्दों को भी ग्रहण किया जाना चाहिए।

वाक्य और अनुच्छेद

१—वाक्य सरल हों। एक वाक्य में एक ही बात कही जाय।

२—वाक्य लम्बे न हों। सामान्यतया वाक्य की लम्बाई एक पंक्ति से अधिक नहीं होनी चाहिए।

३—सरल और प्रचलित मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा को सशक्त बनाने की दृष्टि से किया जाना चाहिए। इनका समावेश स्वाभाविक रूप से हो।

४—अनुच्छेद छोटे-छोटे होने चाहिए।

शैली

भावाभिव्यंजन में शैली का महत्वपूर्ण स्थान है। शैली में लेखकों के व्यक्तित्व की छाप अवश्यम्भावी है। अतएव सभी लेखकों के लिए किसी एक शैली का परिधान निर्धारित करना दुष्कर है। तथापि इस सम्बन्ध में निम्नांकित बातों को लक्ष्य में रखकर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य का सृजन करना उपादेय है।

१—शैली सरल और स्पष्ट होनी चाहिए। लेखकों को इस भावना से मुक्त रहना चाहिए कि वे पाठकों से अधिक शिक्षित अथवा योग्य हैं, जिससे वे पांडित्य-प्रदर्शन के लोभ का संवरण कर सकें।

२—अलंकार वे ही प्रयुक्त किये जाने चाहिये जो सरल एवं व्यंजना में सहायक हों तथा जिनके उपमान भरसक प्रौढ़ों के वातावरण से ही लिये गये हों।

३—शैली बातचीत की सी अपनायी जाए।

४—शैली यथासम्भव ऐसी होनी चाहिए जो विषय को रोचक एवं मनोरंजक बना सके।

५—भाव तथा विचार संक्षिप्त एवं सुसम्बद्ध रूप में व्यक्त किये जायँ।

६—भावों को व्यक्त करने में अन्तःकथाओं का बड़ा महत्व है। अतएव प्रसंगानुकूल इनका भी प्रयोग किया जाय।

नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की रचना के लिए निम्नलिखित शैलियाँ ग्राह्य हैं तथा जिस क्रम में उनका उल्लेख किया जा रहा है वह पाठकों की रुचि की दृष्टि से उपयुक्त जान पड़ता है।

(१) कथा, कहानी
(२) काव्य, लोकगीत तथा प्रहेलिका
(३) वर्णन प्रधान गद्य
(४) नाटक, संवाद एवं प्रहसन
(५) विनोद-वार्ता
(६) प्रवचन
(७) पत्र तथा दैनिकी

[हमारे जीवन में प्रहेलिकाएँ (पहेलियाँ) भी मनोरंजन के साधन हैं। बच्चों से लेकर बूढ़े तक उनके द्वारा मन बहलाव करते हैं। अतएव काव्य और लोकगीत के साथ इनका भी समावेश उचित है। दूसरे 'प्रवचन' भी राष्ट्रपिता 'बापू' और विनोबा भावे के व्यक्तित्व से लोकप्रिय होने के साथ ही एक शैली के रूप में साहित्य में आ गये हैं। अतएव प्रवचन की शैली को भी प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के अन्तर्गत स्थान देना समीचीन है।]

अनुवाद और अनुकूलन

(अ) अनुवाद ऐसे होने चाहिए जो स्वाभाविक हों तथा जिनमें मौलिकता का सा आनन्द प्राप्त हो। शाब्दिक अनुवाद उत्तम नहीं समझा जाता। यदि किसी अन्य भाषा की पुस्तक से अनुवाद किया जा रहा हो तो उस अनुवाद में प्रयुक्त किये जाने वाले विशिष्ट शब्दों को स्पष्ट कर देना चाहिए।

(आ) संस्कृत तथा अन्य भाषाओं के ग्रन्थों में ऐसा साहित्य भी प्राप्त हो सकता है जो नवसाक्षरोपयोगी हो। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा तथा अन्य संस्कृतियों के ग्राह्य-तत्वों को जानने तथा ग्रहण करने के हेतु यह परमावश्यक है कि हम उन्हें अपने नवसाक्षरों तक पहुँचा दें।

ख—विषय-निर्वाचन

नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माता का विशिष्ट उद्देश्य होता है, विशिष्ट दिशा एवं विशिष्ट परिधि होती है। अतएव इस प्रकार के साहित्य के निर्माण के लिए 'विषय-निर्वाचन' में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए :—

(१) समाज (प्रौढ़) शिक्षा का उद्देश्य

समाज (प्रौढ़) शिक्षा के उद्देश्यों को विधिवत् हृदयंगम कर लेने के पश्चात् ही नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के लिए उपयुक्त विषयों का निर्वाचन सम्भव है। सामान्यतया ये उद्देश्य इस प्रकार अंकित किये जा सकते हैं :—

(क) प्रौढ़ों का वैयक्तिक विकास
(ख) प्रौढ़ों का पारिवारिक विकास

(ग) प्रौढ़ों का आर्थिक विकास
(घ) प्रौढ़ों का सामुदायिक विकास
(च) प्रौढ़ों का सामाजिक विकास
(छ) प्रौढ़ों का राजनैतिक विकास
(ज) प्रौढ़ों का सांस्कृतिक विकास

सारांशतः समाज (प्रौढ़) शिक्षा का उद्देश्य है—प्रौढ़ों को इस प्रकार की शिक्षा देना जिससे वे व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से अपने जीवन-स्तर को उन्नत कर सकें। देश के सफल, सहयोगी, उत्तरदायी, जागरूक नागरिक बन सकें तथा उनमें विश्वबन्धुत्व की भावना जागृत हो सके। अतएव नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माताओं को ऐसे विषयों का ही निर्वाचन करना चाहिए जो उक्त उद्देश्यों की पूर्ति में योग दें।

(२) अवस्था-भेद

प्रौढ़ों की मानसिक स्थिति में सामान्य रूप से तीन अवस्थाएँ स्पष्टतया दिखाई देती हैं। इन तीनों अवस्थाओं में न उनकी रुचियाँ ही एक सी होती हैं और न उनकी समस्याएँ ही। यदि एक अवस्था के प्रौढ़ को कल्पना का लोक अधिक प्रिय है, तो दूसरी अवस्था के प्रौढ़ को यथार्थ का और तीसरी अवस्था के प्रौढ़ को अध्यात्म का। प्रत्येक की भावनात्मक, सामाजिक एवं ज्ञानात्मक वृत्तियों में भी अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त एक विशेष अवस्था प्राप्त कर प्रौढ़ों का बौद्धिक, विकास प्रायः अवरुद्ध हो जाता है। उनकी भावनात्मक एवं सामाजिक वृत्तियों में दिशा-परिवर्तन कठिन हो जाता है। प्रत्येक प्रौढ़ को ऐसे ही विषयों में रुचि होगी जो उसकी सुनिश्चित वृत्तियों एवं बौद्धिक विकास की परिधि में आ सकें। अतएव अवस्था विशेष के अनुसार उनकी वृत्तियों एवं बौद्धिक स्तर को ध्यान में रखते हुए विषय-निर्वाचन करना अधिक समीचीन होगा।

उपर्युक्त आधार पर प्रौढ़ों का निम्नांकित वर्गीकरण किया जा सकता है :—

(क) १२ से १८ वर्ष तक के प्रौढ़
(ख) १९ से ३५ वर्ष तक के प्रौढ़
(ग) ३५ वर्ष से ऊपर के प्रौढ़

किन्तु उपर्युक्त विभाजन का यह तात्पर्य नहीं कि वयःक्रम विशेष

प्राप्त होते ही प्रौढ़ों की मनोदशा में आमूल परिवर्तन हो ही जाता है अथवा समस्त भेद स्पष्ट दिखाई पड़ने ही लगते हैं।

(३) लिंग-भेद

स्त्री एवं पुरुष नवसाक्षर प्रौढ़ों की समस्याएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। उनकी विशिष्ट वृत्तियाँ भी पृथक्-पृथक् हैं। स्त्री का प्रमुख क्षेत्र प्रायः घर है तो पुरुष का बाहर। अतः रुचियों, आवश्यकताओं एवं समस्याओं में भिन्नता के कारण नवसाक्षर प्रौढ़ों के अवस्था भेद के साथ-साथ विषय-निर्वाचन में लिंग-भेद का ध्यान रखना भी आवश्यक है।

(४) क्षेत्र-भेद

नवसाक्षर प्रौढ़ न केवल ग्रामवासी हैं वरन् उनका पर्याप्त समुदाय नगरों में भी बसा हुआ है। दोनों का कार्य-क्षेत्र प्रधानतः भिन्न है। ग्राम-निवासी प्रौढ़ का मुख्य व्यवसाय कृषि है, तो नगर-निवासी का व्यापार एवं सेवावृत्ति। कार्य-भेद के अतिरिक्त देशगत भेद भी होता है। साथ ही जहाँ एक ओर कार्यगत भेद तथा देशगत भेद है, वहाँ दूसरी ओर इन विभिन्न भेदों से प्रभावित प्रौढ़ों के सामान्य बौद्धिक स्तर में भी पृथकता है। अतएव विषय-निर्धारण करते समय नवसाक्षर प्रौढ़ों के क्षेत्र-भेद पर दृष्टि रखनी चाहिए।

(५) माँग एवं आवश्यकता

गोष्ठी के प्रायोगिक शोध-कार्य के आधार पर प्रौढ़ों की माँग के अनुसार उनके उपयुक्त साहित्य के विषयों का क्रम सामान्यतः निम्न प्रकार से हो सकता है :—

(१) धार्मिक विषय
(२) मनोरंजन के विषय
(३) आर्थिक एवं व्यावसायिक प्रगति के विषय
(४) सामाजिक विषय

प्रौढ़ अपनी रुचि के अनुसार साहित्य की माँग करता है, किन्तु हमें उसको सफल, सहयोगी, उत्तरदायी एवं जागरूक नागरिक बनाना है। इस दृष्टि से हमें उसे ऐसा साहित्य भी प्रदान करना होगा जो समाज और राष्ट्र के लिए कल्याणकर हो।

अतएव प्रौढ़ साहित्य के निर्माताओं को अपने साहित्य के सृजन के लिए प्रौढ़ों की माँग एवं समाज की आवश्यकता दोनों का ही ध्यान रखना होगा। इस दृष्टि से विषयों की आपेक्षित महत्ता का निम्नलिखित क्रम अधिक उपयुक्त होगा। यह क्रम विशेषतया प्रौढ़ों की अवस्था के आधार पर निर्धारित किया गया है।

१२ से १८ वर्ष के प्रौढ़ों के लिए

१—मनोरंजन
२—जीवनियाँ एवं साहसिक वृत्त
३—स्वास्थ्य एवं शरीर-विज्ञान
४—सामान्य ज्ञान
५—कृषि, उद्योग एवं कला-कौशल
६—सामाजिक विषय
७—नीति और धर्म

१९ से ३५ वर्ष के प्रौढ़ों के लिए

१—आर्थिक समस्याएँ
२—मनोरंजन
३—नागरिक शास्त्र
४—स्वच्छता एवं स्वास्थ्य
५—नीति, धर्म एवं जीवनियाँ
६—इतिहास एवं भूगोल
७—सामान्य ज्ञान

३५ वर्ष से अधिक के प्रौढ़ों के लिए

१—आर्थिक समस्याएँ
२—नीति और धर्म
३—सामाजिक विषय
४—स्वास्थ्य सम्बन्धी
५—मनोरंजन
६—सामान्य ज्ञान

ग—पुस्तक का स्वरूप

पुस्तक को उपयोगी और आकर्षक बनाने के लिए लेखक को प्रकाशन सम्बन्धी ज्ञान एवं अनुभव होना चाहिए। पुस्तक लिखने में लेखक का

मूल उद्देश्य पाठक को अपने अनुभव एवं विचारों से परिचित कराना होता है। इस प्रकार पुस्तक को माध्यम बनाकर लेखक अपने विचारों को पाठक तक पहुँचाता है। लेखक के मन्तव्य को उसी रूप में पाठक तक पहुँचाने के लिए पुस्तक के प्रकाशन की सुव्यवस्था नितान्त आवश्यक है। पुस्तकों में प्रेस सम्बन्धी अशुद्धियों को दूर करने, पुस्तक के आकार-प्रकार, रूप-रंग एवं साज-सज्जा को सुव्यवस्थित रूप देकर, और उसे लेखक के विचारों के अनुरूप, आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाने की महती आवश्यकता है।

पुस्तक के स्वरूप का निम्नलिखित विभाजन किया जा सकता है।

(१) रूप

(१) जैकेट—सुरक्षा पत्र
(२) कवर—आवरण
(३) आरम्भिक पृष्ठ—फ्लाई लीफ
(४) अर्द्ध शीर्षक पृष्ठ—हाफ टाइटिल
(५) आन्तरिक शीर्षक पृष्ठ—इनर टाइटिल
(६) प्राक्कथन
(७) विषय-सूची
(८) भूमिका
(९) शीर्षक
(१०) अनुक्रमणिका (इन्डैक्स)
(११) परिशिष्ट (एपैंडिक्स)

(२) गठन

(१) आकार
(२) सामान्य अक्षरों का आकार (टाइप)
(३) पंक्तियों की लम्बाई
(४) पंक्तियों की दूरी
(५) हाशिया
(६) स्याही
(७) कागज
(८) सिलाई
(९) कटाई

(३) सज्जा

(१) चित्र
(२) रंग
(३) मुद्रण

(४) अन्य बातें

१—रूप

(१) जैकेट सुरक्षा पत्र—व्यावहारिक रूप में नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों के लिए जैकेट की विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

(२) आवरण—नवसाक्षरों से सम्बन्धित पुस्तकों के निर्माण में पुस्तक के आवरण की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। आवरण अधिक टिकाऊ तथा आकर्षक होना चाहिए।

(३) आरम्भिक पृष्ठ—नवसाक्षरोपयोगी मोटी पुस्तकों के लिए आरम्भिक पृष्ठ का प्रयोग वांछनीय है। छोटी पुस्तकों में आरंभिक पृष्ठ की आवश्यकता नहीं है।

(४) अर्द्ध शीर्षक पृष्ठ—आवश्यकता नहीं है।

(५) आन्तरिक शीर्षक पृष्ठ—वांछनीय है।

(६) प्राक्कथन—नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों में प्राक्कथन की आवश्यकता नहीं है।

(७) विषय-सूची—आवश्यकतानुसार विषय-सूची दी जा सकती है।

(८) भूमिका—भूमिका अत्यन्त संक्षेप में होनी चाहिए।

(९) शीर्षक—शीर्षक एवं उपशीर्षक अवश्य देने चाहिए।

(१०) अनुक्रमणिका—अनुक्रमणिका की कोई आवश्यकता नहीं है।

(११) परिशिष्ट—आवश्यकतानुकूल परिशिष्ट भी दिया जा सकता है।

२—गठन

(१) आकार—नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों के लिए आकार कागज के अनुसार निम्नलिखित होना चाहिए :—

कागज का प्रकार	कागज का नाप	फार्म	पृष्ठ-लम्बाई-चौड़ाई	पृष्ठ सं०
१. डबल क्राउन	२०×३०	३	७½×५	४८
२. डबल डिमाई	२२×३६	३	९×५½	४८
३. डबल फुलस्केप	१७×२७	४	८½×६¾	३२
४. डबल क्राउन	२०×३०	४	७½×१०	३२

(२) सामान्य अक्षरों के आकार (टाइप)—नवसाक्षरोपयोगी साहित्य में २४,२० और १६ प्वाइंट के आकार के अक्षरों का प्रयोग होना चाहिए। इन टाइपों के काले फेस और सफेद फेस दोनों का प्रयोग हो सकता है।

(३) पंक्तियों की लम्बाई—यदि नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों का आकार १०×७½ तथा ८½×६¾ है तो क्रमशः प्रत्येक की लम्बाई ४″ से ५″ तक रक्खी जा सकती है। दूसरे शब्दों में २० एम से ३० एम तक रक्खी जा सकती है। छोटे आकार की पुस्तकों में पंक्तियों की लम्बाई कम भी हो सकती है।

(४) पंक्तियों की दूरी—पुस्तक के आकार और टाइप के अनुकूल १८ से २६ पंक्तियाँ रक्खी जा सकती हैं।

(५) हाशिया—चारों ओर इतना छूटा रहे कि सामग्री उभरी हुई प्रतीत हो।

(६) स्याही—भीतरी पृष्ठों की छपाई काली स्याही में ही हो।

(७) कागज—सफेद, टिकाऊ तथा मजबूत हो। अखबारी कागज न्यूज प्रिंट का प्रयोग किसी भी स्थिति में न किया जाय। सामान्यतः २०, २४, २८, ४० पौंड के भार का कागज नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की पुस्तकों के लिए उपयुक्त होता है। आवरण-पत्र के लिए 'स्ट्रा बोर्ड' अथवा ६० पौंड से ८० पौंड तक भार के कवर पेपर का प्रयोग करना चाहिए।

(८) सिलाई—नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों के लिए धागे की सिलाई अच्छी रहती है। मोटी पुस्तकों के लिए जुजबन्दी की।

(९) कटाई—पुस्तक काटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि पुस्तक के चारों ओर का हाशिया सामान्य रूप से बराबर हो।

३—सज्जा

(१) चित्र—(क) चित्र स्वाभाविक, सादे तथा विषय को हृदयंगम कराने में सहायक हों।

(ख) रेखाचित्रों का प्रयोग अर्थ-ग्रहण एवं विचार-ग्रहण के लिए उपयुक्त रहता है।

(ग) वास्तविक चित्रण के लिए फोटो का उपयोग भी करना चाहिए।

(घ) मुखपृष्ठ का चित्र अधिक उत्प्रेरक, स्पष्ट एवं पूर्वाभास देने वाला होना चाहिए।

(च) प्रथम वर्ग के प्रौढ़ों के लिए पुस्तक की लगभग आधा स्थान द्वितीय वर्ग के प्रौढ़ों के लिए पुस्तक का लगभग एक चौथाई स्थान चित्रों के लिए रखना उपयुक्त होगा।

(२) रंग—नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों के लिए चित्रों में एक रंग की संगति, समान रंग की संगति तथा विरोधी रगों की संगति का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिए।

४—अन्य बातें

पांडुलिपि—पांडुलिपि में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिए:—

(क) पांडुलिपि में बड़ी सावधानी से संशोधन करनी चाहिए!

(ख) पांडुलिपि में पर्याप्त हाशिया छोड़ने की आवश्यकता है।

(ग) लेख सुन्दर और स्पष्ट होना चाहिए।

(घ) पंक्तियां घनी न हों। पंक्तियों के बीच में संशोधन के लिए पर्याप्त स्थान होना चाहिए।

(च) विराम चिन्हों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(छ) स्टाइल शीट की सहायता से शीर्षकों के टाइप का भी उल्लेख कर देना चाहिए।

(ज) लेखक की पुस्तक को मूललिपि सुरक्षित रखनी चाहिए।

(झ) पांडुलिपि प्रचलित नीली या काली स्याही में लिखी होनी चाहिये।

(ञ) पांडुलिपि के लिए फुलस्केप साइज के कागज का प्रयोग करना चाहिये तथा कागज के एक ओर ही लिखना चाहिये।

परिशिष्ट

क

श्री बलवंत सिंह स्याल, संयुक्त शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश का उद्‌घाटन-भाषण

प्रिय माहेश्वरी जी और उपस्थित बंधुओ,

वस्तुत: यह मेरे लिए बड़े गर्व और गौरव की बात है कि इस प्रादेशिक प्रौढ़ साहित्य निर्माण गोष्ठी में विद्वान साहित्यकारों, लेखकों, पत्रकारों एवं शिक्षाशास्त्रियों के बीच में इसका उद्‌घाटन करने के लिए आमंत्रित किया गया हूँ।

गोष्ठी के संचालक श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी ने अभी आपके समक्ष जो अपना सुन्दर, साहित्यिक एवं विद्वत्तापूर्ण स्वागत भाषण प्रस्तुत किया है, उससे मेरा काम तो उन्होंने बहुत ही हल्का कर दिया है। उन्होंने बड़े ही सरस और साहित्यिक ढंग से प्रौढ़ शिक्षा एवं प्रौढ़ साहित्य की विभिन्न समस्याओं पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है, फिर भी इस क्षेत्र की कतिपय अन्य आवश्यक एवं महत्वपूर्ण समस्याओं की ओर मैं आपका ध्यान अवश्य आकृष्ट करना चाहता हूँ।

आज हम अपने देश के पुनर्नियोजन में लगे हुए हैं, उसके पुनर्निर्माण में लगे हुए हैं। हमें उसका सर्वाङ्गीण विकास करना है। राजनीतिक उन्नति के साथ हमें उसकी आर्थिक और सामाजिक उन्नति करनी है। अपने देशवासियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। उन्हें स्वस्थ सौंदर्य, संस्कृति और कला से अनुप्राणित करना है। उनमें एक नयी चेतना भरनी है, एक नयी जागृति उत्पन्न करनी है। जिस धर्म निरपेक्ष लोकतंत्र राज्य की स्थापना के लिए हमने संकल्प किया है तथा जिसकी कि वे आधारशिला हैं, उसकी पूर्ति के लिए उन्हें तैयार करना है। उस आधार शिला को, उस नींव को, मजबूत बनाना है, सुदृढ़ बनाना है।

सारांशत: जिस जनता के ऊपर हमारे देश का उत्थान और विकास निर्भर है, हमारे वर्तमान का सत्य और भविष्य का स्वप्न निर्भर है, उस जनता को हमें सब प्रकार से योग्य एवं जागरूक बनाना है। इसके लिए हमें उसके निमित्त उपयुक्त शिक्षा और उपयुक्त साहित्य का प्रबन्ध करना ही होगा। इसमें कोई दो मत नहीं।



श्री बलबन्त सिंह स्याल, संयुक्त शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश

प्रौढ़ों की शिक्षा के सम्बन्ध में मैं बहुधा सोचा करता हूँ कि यद्यपि प्रौढ़ शिक्षा, जिसे हम आज समाज शिक्षा के नाम से अभिहित करते हैं, के कार्यक्रम गत कई वर्षों से हमारे देश में चल रहे हैं तथापि हमारे यहाँ अन्य देशों की अपेक्षा प्रौढ़ शिक्षा के प्रतिशत का औसत बहुत कम है। अन्य देशों ने इस दिशा में बहुत काफी उन्नति की है। किन्तु हमारे देश में हमारे प्रयत्नों के अनुपात में हमें अभी उतनी सफलता प्राप्त नहीं हुई है। हमें इस ओर गंभीरतापूर्वक विचार करना होगा और यह सोचना होगा कि आखिर हम अपने प्रौढ़ भाई-बहिनों को पढ़ने के लिए प्रेरित किस प्रकार करें।

इस सम्बन्ध में मैं आपका ध्यान बालकों तथा प्रौढ़ों की शिक्षा की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। बालकों को आकृष्ट करने के लिए हमारे पास नाना प्रकार के उपकरण हैं, साधन हैं। वे उनसे पढ़ने के लिए आकृष्ट होते हैं, प्रेरित होते हैं। परन्तु हमें यह सोचना है कि उसी प्रकार प्रौढ़ों को पढ़ने की ओर आकर्षित करने के लिए हमारे पास अपनी सीमाओं के भीतर क्या साधन और उपकरण होने चाहिए।

मैं देखता हूँ कि प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिए विभिन्न प्रौढ़ शिक्षा पद्धतियाँ विकसित हो रही हैं और होनी भी चाहिए। ठीक ही है। यह तो क्षेत्र ही अभी ऐसा है कि इस दिशा में जितना ही काम किया जाय उतना ही अधिक अच्छा होगा। किन्तु मेरी तो इस सम्बन्ध में यह धारणा है कि यदि जिज्ञासु के रूप में प्रौढ़ आपके पास पढ़ने के लिए आ जाता है तो फिर आप किसी भी पद्धति से उसे पढ़ावें, उसका मन अवश्य लगेगा। यदि हम चलचित्र आदि उनके आकर्षण की सामग्री उनसे हटा लेते हैं और फिर भी यदि वे हमारे पास पढ़ने के लिए आते हैं तभी हमें समझना चाहिए कि हम अपने प्रयास में सफल हो रहे हैं, अन्यथा नहीं।

बालकों और प्रौढ़ों की शिक्षा के इसी प्रसंग में मैं, आपका ध्यान इस बात की ओर भी आकृष्ट करना चाहता हूँ कि जहाँ हमें बालकों की शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ हमें प्रौढ़ों की शिक्षा की भी उस बाल-शिक्षा के लिए अत्यधिक आवश्यकता है। क्योंकि जब तक हमारे प्रौढ़ भाई-बहिनों में एक नई चेतना एक नई जागृति पैदा न होगी, तब तक वे अपने बालकों को विद्यालय में भेजने

के लिए भी अधिक उत्सुक एवं जागरूक न होंगे। जब तक उनमें वह अभिरुचि और आकर्षण उत्पन्न नहीं होगा, तब तक अधिकाधिक बालकों का विद्यालयों में आना भी सम्भव नहीं होगा। अतएव बाल शिक्षा के विकास के लिए प्रौढ़ शिक्षा की अनिवार्य आवश्यकता है।

इस गोष्ठी में प्रदेश के विभिन्न भागों से आए हुये प्रतिनिधियों को नवसाक्षर प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के सृजन में वांछित शिक्षा-दीक्षा प्रदान की जायगी। यह बहुत आवश्यक भी है क्योंकि प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के सृजन का क्षेत्र एक विशेष क्षेत्र है। इस क्षेत्र की कुछ अपनी विशिष्ट दिशाएं हैं, विशिष्ट समस्याएँ हैं। अपने विशिष्ट नियम हैं, विशिष्ट सिद्धान्त हैं। उन्हें हृदयंगम कर लेना अत्यावश्यक है। और मेरा पूर्ण विश्वास है कि आप अपने संचालकों एवं निर्देशकों के पथ-प्रदर्शन में उनकी पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करेंगे। किन्तु मेरा आपसे यह भी अनुरोध है कि यहाँ से आवश्यक दीक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् आप इस प्रकार के साहित्य का निर्माण निरन्तर करते रहें। क्योंकि यदि ऐसा नहीं हुआ तो फिर कालांतर में आपकी इस दीक्षा का कोई सदुपयोग न हो सकेगा। मैं अनुभव से जानता हूँ कि कुछ वर्ष पूर्व अपने प्रदेश से इसी उद्देश्य से भेजे गये प्रतिनिधि जब लौट कर आए तो उन्हें अपने-अपने पदों पर भेज दिया गया और उनकी उस शिक्षा-दीक्षा का कोई उपयोग नहीं हो सका।

अन्त में मैं आपका ध्यान एक बात की ओर और आकृष्ट करना चाहता हूँ और वह यह कि राज्य सरकार के अन्तर्गत कार्य करने वाले लेखकों को कौन-कौन सी सुविधाएँ दी जायँ जिससे कि उनकी प्रतिभा का उपयोग हो सके। उन्हें बिना विभागीय आदेश प्राप्त किए हुए लिखने की आज्ञा नहीं है। मानवता के नाते उन्हें भी परिश्रम का प्रतिदान मिलना ही चाहिए। अतएव मैं इस गोष्ठी से यह अनुरोध करूँगा कि वह इस पर भी विचार करे तथा विभाग को अपनी संस्तुति दे जिसके कि विभाग इस सम्बन्ध में शासन को तथा भारत सरकार को इस दिशा में आवश्वक सुझाव दे सके।

मैं इस गोष्ठी में भाग लेने के लिए आए हुये समस्त प्रतिनिधियों को हार्दिक बधाई देता हूँ तथा गोष्ठी की सफलता की कामना के साथ इसका उद्घाटन करता हूँ।

जय हिन्द!

श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, शिक्षा प्रसाराधिकारी, उत्तर प्रदेश का स्वागत-भाषण

संयुक्त शिक्षा संचालक महोदय, प्रतिनिधिगण, देवियो तथा सज्जनो !

सर्वप्रथम तो मैं केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत शिक्षा प्रसार विभाग में शिक्षा विभाग द्वारा आयोजित प्रौढ़ साहित्य निर्माण गोष्ठी (Literary workshop for thc productions of literature for Neo-literates.) में भाग लेने के लिए प्रदेश के कोने-कोने से आये हुए प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करता हूँ और श्रीमन्, आपने अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम में से जो अपना बहुमूल्य समय निकाल कर इस गोष्ठी का उद्घाटन-भार स्वीकार कर हमें अनुग्रहीत किया है उसके लिए इस विभाग की ओर से, प्रतिनिधियों, अपने सहायकों तथा अपनी ओर से आपके प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

इस समारोह के श्रीगणेश में आपकी उपस्थिति से हमको बड़ा बल मिला है क्योंकि आप प्रदेश की शिक्षा के प्रशासक मात्र ही नहीं, वरन् विचारक भी हैं और प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में तो आपका एक विशेष योग दान है। वर्षों पूर्व आपकी कुशल लेखनी से निःसृत तथा इसी विभाग द्वारा प्रस्तुत 'प्रौढ़ शिक्षा हस्तामलक' नामक पुस्तक प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र के कार्यकर्ताओं के लिए आज भी एक दीप्त ज्योतिर्स्तम्भ का कार्य कर रही है, और फिर इस विभाग से तो आपका अपना एक सम्बन्ध विशेष भी रहा है।

अतएव मैं तो इस गोष्ठी में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों, अपने सहायकों तथा अपने लिए बड़े गर्व और गौरव की बात ही समझता हूँ कि इसका समारम्भ एक ऐसे व्यक्ति के आशीर्वाद के साथ हो रहा है जो कि प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र का एक अनुभवी कार्यकर्ता ही नहीं, वरन् उससे सम्बन्धित साहित्य का निर्माता भी है। यह मणि-कांचन योग संयोग की बात नहीं, हमारे सौभाग्य की बात है।

श्रीमन् ! जैसा कि आपको विदित ही है नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की आज बहुत बड़ी आवश्यकता है। आज हम जिस युग में होकर गुजर रहे हैं वह युग हमारे देश के लिये पुनर्नियोजन का, पुनर्निर्माण का युग है। हम अपने देश में एक कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लिये प्रतिश्रुत हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही साथ हमने यह भी अनुभव कर लिया है कि जब तक समूचे राष्ट्रीय स्तर पर हम जन-शिक्षा और साहित्य की समुचित व्यवस्था नहीं कर लेते, तब तक हम अपने उपर्युक्त पावन उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतया सफल नहीं हो सकेंगे। कारण कि जनता ही उस कल्याणकारी राज्य की आधार शिला है। उसी के ऊपर आज हमारी राज्य-सरकारों का निर्वाचन निर्भर है। परिणामतः जैसी आधार शिला होगी, वैसा ही उसके ऊपर भवन का निर्माण भी होगा। दूसरे शब्दों में, हमारी आज की जनता जितनी अधिक सशक्त, सक्षम एवं योग्य होगी, उतना ही हमारे राष्ट्र का स्वरूप भी सामर्थ्यवान्, शक्तिवान् एवं कल्याणकर होगा।

शताब्दियों की दासता की अंधेरी निशा में सोये हुए भारत को आज से दस वर्ष पूर्व जब स्वतंत्रता के मंगल प्रभात के प्रथम दर्शन हुए, तो भारतवासियों के हृदयों में एक नये हर्ष, नये उल्लास की लहर दौड़ गयी; एक नई प्रेरणा एवं नई चेतना जागृत हो गयी। जागरण की उस पावन बेला में नवोन्मेष के नव निर्माण के स्वर मुखरित होने लगे। हमें उसी क्षण से यह स्पष्ट लगने लगा कि अपने निरंतर संघर्ष से हमने राजनीतिक स्वतंत्रता तो प्राप्त कर ली है, किन्तु अभी हमें अपने देश को आर्थिक शृङ्खलाओं के बंधनों से मुक्त करना है, उसे फिर से बनाना है। यह कार्य अपेक्षाकृत कठिन था, क्योंकि इसके लिये जो 'अशिव' है, 'अवांछनीय' है केवल उसकी आलोचना तथा उससे मुक्ति पाने के प्रयास ही पर्याप्त न थे, वरन् उसके स्थल पर जो 'शिव' है, 'वांछनीय' है, उसका प्रतिष्ठापन अपेक्षित था। और मेरे विनम्र मत में हम उसके लिए उतने तैयार भी न थे, क्योंकि राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए तो हमें देश की विभिन्न राजनैतिक संस्थाओं ने आवश्यक शिक्षा प्रदान कर दी थी, किन्तु एक कल्याणकारी, शिवमय, अर्थ-सम्पन्न राज्य की पुनर्स्थापना के लिए हमें किसी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा नहीं प्राप्त हुई थी। हमारे ऊपर एक बड़ा भारी उत्तरदायित्व आ गया था जिसका हमें योग्यतापूर्वक निर्वाह

करना था। एक चुनौती थी जिसे हमें सहर्ष स्वीकार करना था। और हमने किया। अपने देश को पुनर्नियोजित करने के लिए हमने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई और उन योजनाओं को सफल बनाने के लिए जनता में अपेक्षित जागरूकता एवं क्षमता उत्पन्न करने के हेतु समाज (प्रौढ़) शिक्षा के रूप में आवश्यक शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था का निश्चय किया। इसी व्यवस्था के अन्तर्गत जितना कि प्रौढ़ों को पढ़ाना-लिखाना आवश्यक था उतना ही उन नव शिशुओं के लिए तथा अन्य थोड़े पढ़े लिखे व्यक्तियों के लिए उपयोगी साहित्य का निर्माण भी अत्यधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि इस प्रकार के साहित्य के अभाव में न तो प्राप्त साक्षरता ही स्थिर रह सकती थी और न उन योजनाओं से सम्बन्धित पूरी-पूरी जानकारी एवं जन-सहयोग ही प्राप्त हो सकता था।

नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की आवश्यकता पर हम एक और दूसरे पहलू से भी विचार करें। हमारे देश में कथा, प्रवचन, भजन, नाटक, आदि मौखिक प्रणालियों से जनता को वांछित शिक्षा प्रदान करने की परम्परा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। परिणामतः इस देश की जनता लिखे हुए अक्षर भले ही न पढ़ सके, किन्तु वास्तव में मौखिक प्रणालियों द्वारा श्रवण एवं मनन के माध्यम से उसे काफी शिक्षा प्राप्त होती रही है। यही कारण है कि आज भी इस देश का औसत निवासी ईश्वर, जीव, ब्रह्म, माया, मोह, आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक आदि भारतीय जीवन के दार्शनिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों पर बात करता हुआ आपको आसानी से मिल जायगा। इतना ही नहीं वह इन विचारों के अनुसार अपने जीवन को भी व्यतीत करता हुआ दिखाई देगा।

किन्तु आज एक ओर तो जन-शिक्षा की यह मौखिक प्रणाली, जो अभी तक एकमात्र प्रभावपूर्ण थी, क्षीण प्रायः होती जा रही है तथा दूसरे वर्तमान परिस्थितियों में केवल उसी से काम भी नहीं चलेगा क्योंकि आज हमारे समाज का स्वरूप ही बदलता जा रहा है। वैज्ञानिक साधनों ने आज हमारी सीमित दुनियाँ के दायरे को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया है। आज हम समूचे संसार से सम्बन्धित हो गये हैं और सारा संसार हम से। परिणामतः हमारे आज के सामाजिक जीवन की परिस्थितियाँ कल के सामाजिक जीवन की परिस्थितियों की अपेक्षा

अधिक जटिल होती जा रही है। इन नवीन परिस्थितियों का सामना करने के लिए हमें नवीन साधनों की आवश्यकता होगी। इसके लिए मौखिक शिक्षा के साथ-साथ जनता को लिखने-पढ़ने की आवश्यक योग्यता भी प्रदान करनी होगी और साथ ही नवीनतम ज्ञान को उसके पास तक पहुँचाने के लिए उसके अनुकूल साहित्य का सृजन भी करना होगा तभी तो उसके ज्ञान का वांछनीय विस्तार होगा, एवं उसके व्यक्तित्व का समुचित विकास होगा।

समाज शिक्षा का एक प्रमुख लक्ष्य है—प्रौढ़ों के 'जीवन स्तर' को ऊँचा उठाना। इस 'जीवन-स्तर' को 'भौतिक स्तर' के संकुचित अर्थ में नहीं समझना चाहिए। इससे हमारा तात्पर्य समूचे जीवन के स्तर से है जिसमें 'भौतिक' और 'नैतिक', 'शारीरिक' और 'आत्मिक', 'आर्थिक' और 'सांस्कृतिक' सभी स्तरों का उन्नयन सम्मिलित है। यदि अंग्रेजी भाषा की शब्दावली मे इसे व्यक्त करें तो इसका तात्पर्य Standard of Living ही नहीं वरन् Standard of Life भी है।

इस सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि आज की इस यांत्रिक सभ्यता के युग में मनुष्य की अपेक्षा मशीन का मूल्य अधिक बढ़ गया है। फलतः आज मनुष्यता दबती जा रही है और पशुता उभरती जा रही है। शस्त्रास्त्रों के नित्य नये आविष्कारों से मनुष्य का अस्तित्व आज खतरे में पड़ गया है। और वास्तविक स्थिति तो यह है कि मनुष्य आज कुछ ऐसा खो सा गया है कि उसकी यही समझ में नहीं आ पा रहा कि वह करे क्या? मानवता के मूल्यांकन की कसौटियाँ ही आज सर्वथा बदल रही हैं। जीवन के भौतिक स्तर को ऊँचा उठाने के फेर में उसके नैतिक आदर्श आज नीचे गिरते जा रहे हैं।

ऐसी परिस्थिति से हमारा देशवासी भी भला कैसे अछूता रह सकता है। यांत्रिक सभ्यता के विस्फोटों की विनाशक ध्वनि उसके दरवाजे पर भी गूँजने लगी है। वह अपने द्वार बन्द कर कान मूँद भीतर बैठा रहे, यह नितान्त असम्भव है। उसे भी इस सारी परिस्थिति के रहस्य को समझना होगा और समझ कर इस विभीषिका से अपने और विश्व के अस्तित्व को बचाने के लिए सबल उपाय ढूँढ़ने होंगे। मानवता के मूल्यांकन के लिए नवीन मंगलमय कसौटियों का निर्माण करना होगा। मशीन के नीचे दबे हुए मनुष्य को ऊपर उठाना होगा। किंतु इस सब के लिए परमावश्यक है शिक्षा और साहित्य—शिक्षा एक

व्यक्ति की नहीं, समष्टि, समाज की। और साहित्य भी एक व्यक्ति के लिये नहीं, समष्टि के लिए, पूरे समाज के लिए।

श्रीमन्! कतिपय महानुभावों का विचार है कि यदि हम बालकों की शिक्षा-दीक्षा का, उनके साहित्य का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लें तो प्रौढ़ों की शिक्षा एवं उनके साहित्य का प्रश्न तो यों ही हल हो जाएगा। किंतु इस सम्बन्ध में मेरा विनम्र मत है कि यह विचार तर्कयुक्त नहीं है। इस विषय में मैं अपनी ओर से कुछ न कह कर भारत के लोकप्रिय प्रधान मंत्री पंडित नेहरू के शब्दों को ही आपके समक्ष निवेदित कर देना चाहता हूँ जो इस प्रकार हैं।

"यह आवश्यक है कि हम बालकों की उन्नति के प्रयास करें, किंतु उन बालक-बालिकाओं के विकास की प्रतीक्षा में हम प्रौढ़ों की उपेक्षा नहीं कर सकते।"

सांराशतः आज प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के निर्माण की बहुत बड़ी आवश्यकता है। जिस प्रकार विभिन्न कक्षा के बालकों के मानसिक स्तर, योग्यताएँ, आवश्यकताएँ एव वातावरण को ध्यान में रखकर एक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित ढंग से पाठ्य एवं सहायक पुस्तकों का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार प्रौढ़ों के लिए भी उनके मानसिक स्तर, योग्यताओं, आवश्यकताओं एवं वातावरण को ध्यान में रखकर एक वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित साहित्य का निर्माण होना चाहिए। यह एक बहुत बड़ी समस्या है जिसके लिए विशेष प्रयत्न अपेक्षित हैं।

प्रौढ़ोपयोगी साहित्य की इसी आवश्यकता, महत्ता एवं समस्या को ध्यान में रखते हुए विगत कई वर्षों से केन्द्रीय तथा प्रादेशिक राज्यों की ओर से इस दिशा में निरन्तर सराहनीय प्रयत्न हो रहे हैं। इन्हीं प्रयत्नों की शृङ्खला में अखिल भारतवर्षीय प्रौढ़ शिक्षा संघ, दिल्ली के अन्तर्गत सन् १९५२ में एक सेमिनार का आयोजन किया गया जिसमें नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण के विभिन्न पहलुओं पर विचार-विमर्श हुआ। सन् १९५३ में केन्द्रीय सरकार की ओर से भी एक ऐसी गोष्ठी का आयोजन हुआ जिनमें विभिन्न प्रदेशों के साहित्यकार सम्मिलित हुए। हमारे प्रदेश में भी, इसी विभाग में, सन् १९५६ में केन्द्रीय सरकार की प्रेरणा से दो सप्ताह के लिए प्रौढ़ साहित्य सेमिनार का आयोजन किया गया। और प्रस्तुत प्रौढ़ साहित्य निर्माण

गोष्ठी भी उसी प्रयास-श्रृङ्खला की एक महत्वपूर्ण एवं अविच्छिन्न कड़ी है।

प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के वास्तविक सृजन में केन्द्रीय सरकार, मैसूर प्रौढ़ शिक्षा-संघ, मध्य प्रदेश के समाज शिक्षा विभाग, जामिआ मिलिया, दिल्ली के इदारा तालीमो तरक्की, साक्षरता भवन लखनऊ, सस्ता साहित्य मंडल, शिक्षा प्रसार विभाग, प्रयाग एवं अन्य कतिपय संस्थाओं के प्रयत्न भी बड़े ही सराहनीय रहे हैं। किन्तु अभी इस दिशा में बहुत अधिक करना शेष है, और हमारे प्रदेश का तो इस कार्य में एक विशेष उत्तरदायित्व है क्योंकि हिन्दी हमारी राज्य-भाषा ही नहीं, वरन् मातृभाषा भी है।

श्रीमन्! जैसा कि मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ यह प्रौढ़ साहित्य निर्माण गोष्ठी इस विभाग में केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विकास की द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेशीय सरकार के शिक्षा बिभाग द्वारा आयोजित की गयी है। नवसाक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण के क्रियात्मक क्षेत्र में इस प्रदेश के लिए यह सर्वथा नवीन एवं पहला ही प्रयास है। इसका प्रमुख उद्देश्य इसमें भाग लेने वाले प्रतिनिधियों को नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण में प्रशिक्षण प्रदान करना है।

महोदय! इस साहित्य के निर्माण से सम्बन्धित यों तो कई प्रश्न हैं, किन्तु उनमें से प्रमुख हैं :—

१—भाषा और शैली।

२—विषय।

३—पुस्तक का वाह्य एवं आंतरिक रूप।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, सारांशतः सर्वप्रथम यही विचारणीय होगा कि नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-निर्माण के लिए खड़ी बोली हिन्दी ही अपनाई जाय या भिन्न-भिन्न क्षेत्रों की बोलियाँ। शब्दों का चयन किस प्रकार का हो।

प्रौढ़ोपयोगी साहित्य के सृजन के लिए किसी निश्चित शब्दावली के अभाव में उक्त साहित्य का सृजन कहाँ तक संभव है? वाक्य किस प्रकार के होने चाहिए? अलंकारों का प्रयोग कहाँ तक वांछनीय है?

प्रस्तावित साहित्य के लिए शैली का क्या स्वरूप होना चाहिए? कथा, कहानी, कविता, लोकगीत, नाटक, संवाद, पत्र आदि रचना के

विभिन्न स्वरूपों में से प्रौढ़ों को कौन से अधिक रुचिकर होते हैं ? क्या विशेषता होनी चाहिए ?

नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-सृजन के लिए दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है विषय निर्वाचन का। इसके लिए हमें प्रौढ़ों के मानस, उनकी शिक्षा के स्तर, आयु, लिंग भेद, क्षेत्र तथा उनकी एवं समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा तथा समाज शिक्षा के उद्देश्यों को भी स्पष्ट रूप से हृदयंगम कर लेना होगा। लेखक या प्रकाशक द्वारा पुस्तकों को मनमाने विषयों पर लिख देने अथवा प्रकाशित कर देने से ही काम न चलेगा !

उपर्युक्त साहित्य के निर्माण में पुस्तक के वाह्य एवं आन्तरिक रूप का प्रश्न भी एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। लेखक एवं प्रकाशक इस दिशा की ओर प्रायः अधिक ध्यान देते नहीं देखे गये हैं, किन्तु इनकी उपेक्षा करना मानो पुस्तक के शरीर और आत्मा में से उसके शरीर की उपेक्षा करना है जो कि किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं हो सकता। अतएव इस प्रसंग में पुस्तक के आकार, कागज, मुखपृष्ठ, टाइप, चित्र आदि समस्त आवश्यक बातों पर विचार करना होगा।

इस गोष्ठी में समस्त प्रदेश से बीस प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं जो समाज (प्रौढ़) शिक्षा के व्यावहारिक क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इन प्रतिनिधियों को गोष्ठी की आरम्भिक अवधि में नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण के विभिन्न आवश्यक सिद्धान्तों एवं नियमों से अवगत कराया जाएगा। तत्पश्चात् वे उन सिद्धान्तों तथा नियमों के अनुसार नवसाक्षरों के लिए पृथक्-पृथक् रूप से पुस्तक-लेखन का कार्य आरम्भ करेंगे। पुस्तकें लिख जाने के पश्चात् देहाती क्षेत्र में जाकर प्रौढ़ पाठकों पर उनका परीक्षण किया जाएगा तथा उस परीक्षण के बाद उन पांडुलिपियों में पुनः आवश्यक संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किए जाएँगे तथा उन्हें अंतिम स्वरूप प्रदान किया जाएगा।

उपर्युक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिए गोष्ठी के प्रतिनिधि तीन टोलियों में विभक्त होकर अपने अपने नायकों के निर्देशन में कार्य करेंगे। प्रत्येक दल में, कार्य होगा वह कर्णधार समिति (Steering Committee) के माध्यम से गोष्ठी के समस्त सदस्यों के समक्ष विचारार्थ एव

स्वीकृतार्थ प्रस्तुत किया जायगा। प्रशिक्षण के इस समस्त कार्य में सर्व श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्रोफेसर, हिन्दी, सेन्ट्रल पैडागाजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट, रामजी लाल बधौतिया, लेखक, शिक्षा प्रसार विभाग तथा पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी प्रति उप शिक्षा विद्यालय निरीक्षक, प्रयाग मेरे सहायक होंगे। प्रबन्ध का अन्य सारा भार मेरे सहायक शिक्षा प्रसाराधिकारी श्री राज नारायण सक्सेना, चल चित्रालयाध्यक्ष श्री चन्द्रदत्त पसबोला, पत्रकार श्री रामलखन पाण्डे तथा अन्य साथियों ने स्वतः ही संभाल लिया है।

श्रीमन्, यह प्रौढ़ साहित्य निर्माण गोष्ठी प्रयाग जैसी पावन भूमि एवं माघ मास जैसे पुनीत मास में ही सम्पन्न होने जा रही है, यह भी हमारे लिए बड़े सौभाग्य की बात है। प्रयाग की इस पवित्र स्थली में सरस्वती की गुप्त एवं व्यक्त, दोनों ही धाराएँ युग-युगांतर से प्रवाहित होती आ रही हैं। फलतः इस पुण्य भूमि में जो भी लेखक अपनी कामना की पूर्ति के लिए आया है उसे मा सरस्वती का वरदान प्राप्त हुआ ही है और वह कुछ न कुछ लिख कर ही गया है। फिर माघ मास के ये पुनीत दिन, जिनमें कि देश के कोने-कोने से आये हुए योगी और यती, साधू और सन्यासी, गृहस्थ और विरक्त अपनी अपनी साधना और आराधना, ध्यान और धारणा, पूजा और अर्चना एवं तप और त्याग में तल्लीन एक अनिर्वचनीय आध्यात्मिक आनन्द की खोज में संलग्न हैं, हमारे लिए वरदान के रूप में ही प्राप्त हुए हैं। अतएव हमारा तो यह विनम्र विश्वास है कि सरस्वती और संस्कृति के इस पावन संगम पर प्रदेश के कोने कोने से एकत्र हुए गोष्ठी के प्रतिनिधियों की तीनों टोलियों की चिन्ता-धाराएँ गंगा, यमुना और सरस्वती की तीनों धाराओं के समान एक में विलीन हो ज्ञान-गंगा का वह अजस्र प्रवाह प्रवाहित करेंगी जो प्रौढ़ साहित्य की तृषित भाव-भूमि को अभिसिंचित कर उसको और अधिक उर्वरा बनाने में समर्थ हो सकेगा।

श्रीमन्। इन शब्दों के साथ में एक बार पुनः समस्त प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए तथा आपके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करते हुए आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप इस गोष्ठी का उद्घाटन कर हमें अपने अनुभव का बल प्रदान करें एवं आशीर्वाद दें।

जय हिन्द

श्री राजनारायण सक्सेना, सहायक शिक्षा प्रसाराधिकारी, उत्तर प्रदेश का धन्यवाद प्रकाशन

देवियो तथा सज्जनो !

बड़े हर्ष की बात है कि इस साहित्य निर्माण गोष्ठी का उद्घाटन समाज शिक्षा के अनुभव प्रौढ़ कार्यकर्ता द्वारा, सम्पादित हुआ है, जो, इस प्रदेश के, शैक्षिक निर्माण के, अनेकानेक सूत्रों के सूत्रधार, एवं संचालक हैं, जिन्होंने स्वयं प्रौढ़-शिक्षा से सम्बन्धित साहित्य-निर्मित किया है तथा जिन्होंने समाज-शिक्षा को इसके बाल्यकाल से ही पोषित किया है।

जिन्हें, हमारे संयुक्त शिक्षा संचालक की दिनचर्या, उनके व्यस्त स्थानीय तथा प्रादेशिक कार्यक्रम का बोध है, जिन्होंने उनके कमरे में पत्रावलियों के ढेरों में उन्हें तन्मय देखा है, वे ही अनुभव कर सकते हैं, कि इस गोष्ठी के उद्घाटन के लिए, समय निकाल कर, उन्होंने कितनी महती कृपा की है।

इस उद्घाटन के द्वारा, इस गोष्ठी से, उन्होंने जो सानिध्य स्थापित किया है, वह न केवल इस गोष्ठी की अवधि में ही, उनके बहुमूल्य समय का कुछ अंश लेती रहेगी, वरन् गोष्ठी के समाप्त होने पर, अनुगामी कार्य (फालो अप) के सम्बन्ध में, अथवा इस गोष्ठी में संकलित बीजों को वृक्ष का रूप देने में भी, उनकी सतत मनस्कता की अपेक्षा रखेगी।

संयुक्त शिक्षा संचालक महोदय,

इस उद्घाटन के निमित्त से, आपने जिस गुरुतर भार को ग्रहण किया है तथा हम सब में जिस उत्साह और आशा का संचार किया है उसके लिए हम, शिक्षा प्रसार विभाग के आपके सहायक, एवं गोष्ठी के सदस्य हार्दिक आभार प्रकट करते हैं।

अतिथियो,

इस सभा में जिस साहित्य-निर्माण-यज्ञ का आज संकल्प किया

गया है, उसमें आप हमारे सहयोगी हैं। इस यज्ञ की सफलता में हमें आपकी शुभ कामनाओं तथा आशीर्वाद की आवश्यकता तो है ही वरन् पथ-प्रदर्शन के लिए भी आपके प्रौढ़ परामर्श की आवश्यकता रहेगी। आपने अपनी उपस्थिति से हमें, इस सम्बन्ध में जो मूक आश्वासन दिया है तथा विद्वज्जन्! आपने अपनी उपस्थिति से इस वातावरण को ज्योतिर्मय बनाया है, उसके लिये हम आपके अत्यन्त आभारी हैं।

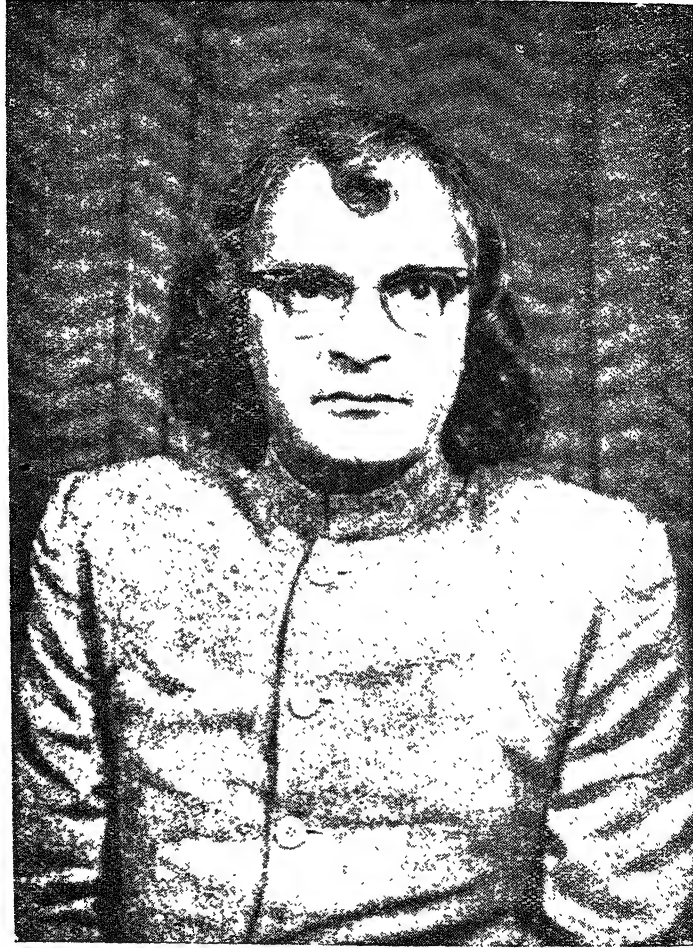
गोष्ठी के सदस्य सहयोगियो,

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में आधारभूत शिक्षा (Fundamental Education) समाज शिक्षा (Social Education) कामकर लोगों की शिक्षा (Workers Education) ग्रामोपयोगी शिक्षा (Rural Education) तथा जन-शिक्षा (Mass Education) के रूप में जो अनेक धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं, जो कहीं एक दूसरे में लय तथा कहीं एक दूसरे से स्पर्श करती हैं और कहीं अलग प्रवाहित होती हैं, इन सबने प्रौढ़-शिक्षा के रूप को बहुत विशाल बना दिया है।

- देश की प्रगतिशील आवश्यकताओं ने तथा भिन्न-भिन्न आदर्शों के भार ने भी उसे कहीं तो विवादग्रस्त और कहीं बोझिल बना दिया। फिर शिक्षा की ये धाराएँ उपादान हैं, उपादेय नहीं, माध्यम हैं, ध्येय नहीं, क्रिया हैं, कृति नहीं।

इनके द्वारा वस्तुओं में नहीं वरन् मानव में, वह भी पार्थिव नहीं वरन् उसमें स्थित सत्, चित्त और आनन्द तथा सत्यं, शिवं और सुन्दरं में नव प्राण प्रतिष्ठा करना है तथा मनुष्य के क्रमशः संगठित विकसित और समुचित रूप, परिवार समाज, राष्ट्र तथा अन्तर्राष्ट्र में वांछनीय जागरूकता, गतिशीलता, विकास, समन्वय तथा संगठन लाना है।

आपने इस महत्वपूर्ण कार्य का जो बीड़ा उठाया है उसके लिए शिक्षा प्रसार विभाग और प्रादेशिक शिक्षा विभाग ही नहीं वरन् समस्त देश के शिक्षा एवं विकास-शृङ्खला की ओर से भी आप धन्यवाद के पात्र हैं। मैं शिक्षा प्रसार विभाग के प्रतिनिधि तथा गोष्ठी के सहायक प्रबन्धक के रूप से, संयुक्त शिक्षा संचालक तथा अतिथियों को, शिक्षा विभाग के प्रतिनिधि के रूप में आगन्तुक महानुभावों को तथा देश की शिक्षा एवं विकास शृङ्खला के अणु के रूप में गोष्ठी के सदस्यों को पुनः धन्यवाद देता हूँ। —जय हिन्द!



श्री सुमित्रा नन्दन पंत

कविवर पं० सुमित्रानन्दन पंत का दीक्षान्त भाषण

संचालक महोदय और उपस्थित सज्जनो।

आज मुझे प्रौढ़ साहित्य निर्माताओं के बीच उपस्थित होने में बड़ा हर्ष हो रहा है और मैं इसे बड़े गौरव की बात मानता हूँ। मैं भी एक लेखक रहा हूँ और जब मैंने लिखना शुरू किया था शायद उस समय क्षितिज पर एक दूसरा ही चित्र था; एक दूसरी ही बात मेरे सामने थी। यह बीसवीं सदी हमारे देश के लिए एक ऐसी सदी रही है जिसका आधा भाग तो हमारी करीब-करीब दासता में बीता है—मेरी पीढ़ी का तो बीता ही है– और आधा भाग आज नये निर्माण का प्रश्न बन कर हमारे सामने है।

हमारा देश स्वाधीन हो गया है, एक बहुत ही बड़े गौरवपूर्ण संग्राम के बाद, एक सांस्कृतिक युद्ध के बाद। हम लोग जो लेखक हैं इस बात से अपने को अत्यन्त गौरवान्वित मानते हैं कि हम कितने महान युग में हुए हैं! आज आप लोग प्रौढ़ों के लिए जो साहित्य लिख रहे हैं, मैं आपके कामों को उतना ही उच्चकोटि का मानता हूँ जितना जो कि कल्पनाजीवी लेखक हैं, उनका काम है। आप लोगों के लिए मैं वही बात सोचता हूँ जो अपने लिये सोचता हूँ।

आज जब मैं संसार की ओर देखता हूँ तो और एक दूसरी बात मेरे मन में आती है। वह यह है कि आज संसार में एक ऐसा नवीन युग आ रहा है, एक ऐसा अभूतपूर्व युग आ रहा है कि अब हम समस्त मनुष्यों के लिए सोचने लगे हैं। पहले यह संभव नहीं था। किसी युग और इतिहास में यह सम्भव नहीं रहा है कि हम दूर, ओर-छोर व्यापी जितने भी मनुष्य हैं, जिनको कि हम जनता कहते हैं, उनके लिए सोच सकें और उनको एक ऐसे स्तर पर ले आवें जिसपर कि पिछले युगों के मध्य वर्ग के लोग रहे हैं; ऐसे आर्थिक स्तर पर जिसमें मनुष्य एक दूसरे के निकट आ जाएँ, जिस पर कि जो वर्गों का विभाजन है, नगरों और गाँवों का विभाजन है, उनके बीच में जो दीवार है वह विलीन हो जाए।

हमें इस पृथ्वी पर ऐसी सभ्यता को प्रतिष्ठित करना है, ऐसी संस्कृति को प्रतिष्ठित करना है जिसमें कि मनुष्य-मनुष्य बराबर हो और मनुष्यों

में ऐसा बाहरी और भीतरी संतुलन आ सके जिस संतुलन की पृष्ठभूमि नैतिकता हो या सामाजिक चेतना हो। आपके पास भी कोई आदर्श हो जो कि समस्त बाहरी और भीतरी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। यह आदर्श जो भी है लेकिन निश्चय ही हम एक ऐसी चीज चाहते हैं जो कि समस्त मनुष्यों को तृप्त कर सके।

अगर ध्यान पूर्वक सोचें तो पश्चिम और पूर्व के जितने भी विचारक हैं उन्होंने सिर्फ यह काम किया है, यह सोचा है, कि वह कौन सा सत्य है और उस सत्य को धरती पर कैसे प्रतिष्ठित किया जाए, तो मैं देखता हूँ कि प्रौढ़ साहित्य निर्माताओं को भी वह बात अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। आज हम उस पृथ्वी पर जिसका कि केन्द्र नगर है और जिस पर बड़े बड़े गाँव है, जो कि मधु-छत्र की तरह समस्त एक ही चीज हैं, जिसका जीवन एक है, उस पर हम आपस के जो भी विभेद हैं, दृष्टिकोण हैं, उनमें किस तरह एक सी समानता स्थापित कर सकते हैं।

मैं तो ऐसा नहीं मानता कि सभी दृष्टिकोणों में हमारे गाँव वाले पीछे हटे हुए हैं। मैं यह नहीं मानता क्योंकि मैं गाँव में बहुत साल रहा हूँ—आठ-दस साल रहा हूँ। उन दिनों में गाँव वालों से बहुत ही निकट सम्पर्क में आया था। मैंने उनके जीवन पर लिखा भी है। तब भी मेरी यही धारणाएँ थीं। जीवन की बहुत सी ऐसी चीजें हैं जो हम गाँव वालों से सीख सकते हैं। उदाहरणार्थ, अगर मैं शब्दों में बाँधकर कहूँ, जो कि बड़ा कठिन होता है, तो गाँव वालों में हृदय की उदारता ज्यादा है तो नागरिकों में बौद्धिक तत्व ज्यादा है। नागरिकों के पास बौद्धिक प्रकाश है। उनको उसकी बड़ी भारी जरूरत थी। उन्होंने जीवन का विश्लेषण किया। उसको देखा, परखा और बहुत सारी नई चीजें दीं। नागरिकों ने विज्ञान दिया। उन्होंने, हम जो यह भाषा बोल रहे हैं वह दी। नागरिकों ने व्याकरण दिया, छापा दिया, तार दिया—क्या नहीं दिया। यह सब नगर में सम्भव था, लेकिन यदि आप यह कहें कि नगरवालों ने ही अपने बूते किया, यह भी गलत है। नगर वालों ने यदि यह सब दिया है तो गाँव वाले उन्हें पालते रहे हैं। गाँव वालों में हृदय की मान्यताएँ रही हैं, सहानुभूति रही है। उनमें आपस की सादगी रही है, सरल जीवन रहा है। भारत के गाँव में मुझे जो मिला, और जो संसार के और लोगों से अपने भारत के लोगों की, जिसमें कि गाँव वाले ही अधिक हैं, तुलना करता हूँ तो मुझको ऐसा लगता है कि

वे बहुत ही श्रेष्ठतर हैं। मैं तो इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सांस्कृतिक दृष्टि से हमारे गाँव वाले किसी तरह गये बीते नहीं हैं। बाहर का रूप उनका बहुत मैला है। आज के युग की दृष्टि से अच्छा नहीं है। मैंने उनको कुरूप कहा और यह बिलकुल मेरे सच्चे मन की धारणा थी। मैंने आज भी गाँव वालों पर लिखा है और कहा है कि हे भगवान् इनको रूप दो। पहले सत्य को ये बाहर के रूप से देखें। ये सुन्दर हो सकते हैं। कैसे घरों में गाँव वाले रहते हैं, कैसे घरों में हमारे मजदूर रहते हैं, यह दुख का विषय है। वे मैले-कुचैले रहते हैं और वैसे ही अपने बच्चों का लालन-पालन करते हैं।

मनुष्य को कैसा होना चाहिए, अगर आप अपने सामने एक चित्र बनाएँ और उसके बाद गाँव वालों की ओर देखें तो सचमुच में सोचता हूँ कि आप बेहोश हो जाएँगे। इतनी बुरी उनकी अवस्था रही है हमारे देश में। इसके बहुत से कारण हैं, जिनका कि इस छोटी सी गोष्ठी में कहना मेरे लिये सम्भव नहीं है। आप और देशों से तुलना करके देखें तो भारतवर्ष का दारिद्र्य भारतवर्ष के समस्त चेहरे पर लिखा हुआ है। यह एक बड़ी खराब बात है। लेकिन अगर कोई देश आज अच्छा है तो हमारा देश भी दस साल में नहीं तो बीस साल में ऐसा भरा-पूरा हो सकता है। जहाँ तक अन्न का दारिद्र्य और आर्थिक दारिद्र्य है वह तो सब मिट सकता है क्योंकि चीन और रूस ने यह करके दिखा दिया है। किन्तु मैं केवल इसी दारिद्र्य की बात नहीं कर रहा था। आप अपने गाँव वालों के मन में कई ऐसी बातों के बीज बो सकते हैं जिनकी सुनहली फसल आगे देखकर आगे की पीढ़ियाँ आपको बहुत धन्यवाद देंगी।

अभी आपने (गोष्ठी संचालक ने) जो विवरण दिया है उसमें बड़ी उपयोगी बातें हैं जिन पर आपने विचार किया है। उनमें और कुछ जोड़ना कठिन है। खैर, फिर भी मैं यह कहता हूँ कि गाँव वालों यह जरूरी है। में सबसे पहले, जिस तरह भी हो, सफाई का माद्दा होना चाहिए। उनमें सामूहिकता की भावना भी पैदा करनी है। प्रकृति नेमनुष्य को छोड़ा था जंगल में। वह आदमी बन कर अपने बल से निकला। तब कोई सामूहिकता की भावना नहीं थी। तब तो मनुष्य, मनुष्य का दुश्मन था। यह भाई-चारे की भावना भी नहीं थी। तब तो मनुष्य मनुष्य को देख कर गुर्राता था जैसे जानवर गुर्राते हैं, कुत्ता गुर्राता

है। तो ऐसे युग में आदमी अपने को कीचड़ से बाहर निकाल सका इसको हम कहते हैं नैतिक रीढ़। गाँव वालों में हमारी जो यह नैतिक रीढ़ है अनेक कारणों से, और मेरा ख्याल है मुख्यतः अशिक्षा के कारणों से, कमजोर पड़ गयी है। उनको सहानुभूति मिलनी चाहिए अच्छे लोगों की। अब हम गाँव वालों की ओर देख रहे हैं, नागरिकों की ओर देख रहे हैं। उनके समझने की कोशिश कर रहे हैं। पहले तो हमारे ऊपर एक ऐसी दासता छायी हुई थी, एक ऐसी परावलम्बिता थी कि हमको यह सोचने का मौका ही नहीं मिलता था कि कैसे हम अपने को पहचानें। विदेशों की निन्दा करके क्या फायदा! वह तो हमारा ही कसूर था कि हमने उनको आने दिया। इतने बड़े हाथी से देश पर चूहे के समान लोग राज करें, यह कसूर किसका है हाथी का या चूहे का?

तो खैर उस बात को भूलिए। मैं आपसे कहता हूँ कि तब हमारे सामने यह प्रश्न ही नहीं था। तब तो हम एक दूसरे से विमुख होकर, हम ही में से जो अफसर बन जाते थे, अपने भाइयों को जरा छोटी नजर से देखते थे। सोचते थे ये हमारे पास न आएँ तो अच्छा है। तो वह तो दूसरी बात थी। वह एक हमारा बड़ा भारी दैन्य था और विवशता थी और हमारा नैतिक पतन था। मनुष्य-मनुष्य से घृणा करे यह तो 'लिमिट' है नैतिक पतन की। अगर आदमी-आदमी से घृणा करे, अकारण द्वेष करे और अकारण किसी की खराबी करे तो समझ लेना चाहिए कि उसके भीतर बड़ा भारी नैतिक पतन आ गया है। यह ऐसी बीमारी है कि टायफाइड और कैंसर से भी बड़ी खराब है।

तो खैर मैं कह रहा हूँ कि गाँव वालों में पहले आपको एक नैतिक रीढ़ जमानी है। उनमें जागरूकता पैदा करनी है। लेकिन इसका अर्थ केवल यह नहीं कि गाँव वाले समझ सकें कि नगर वालों की तरह वे क्या करेंगे। प्रकृति ने इतना मस्तिष्क दिया ही नहीं। हाथ-पाँव की इतनी जरूरत है प्रकृति को। यह तो जीवन का क्षेत्र है, कोई मन का क्षेत्र तो है नहीं। अपने तुलसीदास जी कहते हैं कि 'कर्म प्रधान विश्व रचि राखा'। उन्होंने मनःप्रधान नहीं कहा, क्योंकि कर्म अगर नहीं कीजिएगा तो घर कैसे बनाइएगा, कैसे खेती उगाइएगा, कैसे सब

कुछ करिएगा संसार में। किसी शहर में जाइए, आपको कोई फालतू चीज मिल ही नहीं सकती। क्यों बनाएँगे आप यह तो भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की बात है। उनकी जो सबसे बड़ी आवश्यकता है वह है उनकी मानसिक कमियों की पूर्ति करना। उनको इंसान बनाना, उनको ऐसी मशीन बनाना, उनके मन को ऐसा कल्याणप्रद यन्त्र बनाना कि वे अपने देश का निर्माण कर सकें, अपना निर्माण कर सकें। गाँव वालों में द्वेष मुझे कम दिखाई दिया। मैंने ऐसा भी देखा है कि अगर किसी पड़ोसी के घर में आग लगी तो इधर का पड़ोसी हँसता है। यह कोई विचित्र बात नहीं है। उनका कोई दोष नहीं। जब मैं प्रकृति के बनाए हुए मनुष्य को देखता हूँ और इतिहास के बनाये हुए मनुष्य को देखता हूँ, परिस्थितियों के गढ़े हुए कुरूप मनुष्य को देखता हूँ तो फौरन मुझे यह भेद मालूम हो जाता है। प्रकृति ने ऐसा तो कुछ नहीं दिया है। प्रकृति में तो मैंने यह देखा है कि जहाँ मैं रहता था उसके चारों ओर बन्दर थे। वे भी अपने बच्चों को बहुत अधिक प्यार करते थे। उनमें भी एक सामूहिकता की भावना थी। चीटियों में, मधुमक्खियों में, जो भी जीवन प्रिय हैं, जिनको भी कुछ करना है, सामूहिकता की भावना उनके भीतर है। फिर हमारे भीतर यह स्वस्थ दृष्टिकोण अपने आप टूट गया, तो यह इतिहास ने तोड़ दिया, परिस्थितियों ने तोड़ दिया अनेक कारणों ने तोड़ दिया। इसका आपको निर्माण करना है।

तो यह जो मैं आपको कह रहा था कि गाँव वालों में पहले जो सबसे बड़ी भारी बीज बोने की जरूरत है, वह है सफाई की। और अगर जो वे यह सोचें कि भाई हम तो अमीर नहीं हैं, शहर वालों की तरह इतना रुपया नहीं, साफ कैसे रह सकते हैं तो यह गलत है। देखिए, गाँधी जी सब छोड़ कर साफ रहे। गाँधी जी सब छोड़ कर, त्याग कर, एक लँगोटी पहनते थे, लेकिन साफ। तो साफ तो, अगर आदमी में प्रेम हो, तो जरूर रहता है और वैसे नगर वालों को, जिन्हें सफाई का शौक नहीं है, जिनको यह शिक्षा नहीं मिली है, बहुत ही गंदे रहते हैं। इसलिए गाँव वालों में सफाई की बात जरूर पैदा करनी चाहिए। उनके भीतर प्रौढ़ शिक्षा वालों को ऐसी चीजें नहीं भरनी चाहिए जो उनके पहुँच के बाहर हों, क्योंकि ये तो तुलनात्मक चीजें हैं। इनमें कोई भलाई भी नहीं है। और मैं तो कहता हूँ कि यदि आदमी

सादा खाना खाकर स्वस्थ रह सकता है तो बढ़िया मसालेदार खाना उसे न मिले तो कोई बात नहीं है। और यह तो रोग हैं। हमारे विचारकों और नीतिज्ञों ने देखा कि जितनी इस तरह की चीजें हैं सब रोग हैं तो उन्होंने मनुष्य से कहा कि छोड़ो इनकी दासता को। गाँव वालों को तो विधि ने ऐसी परवशता में रक्खा है कि वे इनमें से कई चीजों से वंचित हैं। तो गाँव वालों के लिए मुझे मुख्य लगता है कि उन्हें जो नरक है, गंदगी है उससे उठाना ही चाहिए और उनके भीतर यह भावना पैदा करनी चाहिए कि भाई इससे किसी तरह उठो। नाली साफ करो। जो कुछ भी है, घर अगर कच्चा ही है तो कोई बात नहीं, लीप-पोतकर अच्छे रक्खो। मिट्टी का घर साफ नहीं रह सकता यह बात मैं नहीं मानता।

जब हम अपने देश को सामूहिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से देखते हैं तो देश के व्यक्तित्व से हर एक चीज को देखना ही होगा। वर्तमान परिस्थिति में गाँव वालों के भीतर कई भारी ऐसी चीजें पैदा की जा सकती हैं जिससे कि उनके जीवन का धरातल कहीं ऊँचा उठ सकता है। कम से कम मनुष्यत्व की दृष्टि से तो वह उतने ही ऊँचे हो सकते हैं जितने आप हैं और मैं कहता हूँ कि जिस देश में तुलसीदास की रामायण पढ़ी जाती है, जैसे कि उत्तर भारत में, तो वह देश भीतर से एक दम कंगला नहीं है। मैं यह नहीं मानता इस बात को। सिर्फ यह है कि उन को कुछ लोग ऐसे मिलें जो उनके पथनिर्देशक हों और उनके भीतर ऐसे भाव भरें कि जिससे उनमें आत्म-गौरव जो हो वह ऐसा आत्म-गौरव न हो जिसे कि दर्प कहते हैं, बल्कि वह शील से भरा हुआ आत्मगौरव होना चाहिए जो कि हमें हमारे गाँव वालों में मुझे बहुत ही देखने को मिला है। और मैं सोचता हूँ कि अगर हम उनकी इन छोटी-मोटी ऐसा आवश्यकताओं की पूर्ति करें तो आप लोग अपने लेखन से वहाँ के जीवन के प्लाट्स वगैरह लेकर, कथानक लेकर, रंग-मंच में उपस्थित करके उनके सामने रखकर उन्हीं से कहें कि इसका उपाय कीजिए। यह नही हो सकता कि सब चीज सरकार पर ही छोड़ दी जाय। सरकार तो देश के सामने इतने अँगूठे के बराबर है। क्या कर सकती है? जब तक कि हम सभी अपने हाथ-पाँव नहीं चलाएँगे, क्या सरकार ढकेल कर हमको आगे ले जाएगी। कैसे ले जा सकती

है ? सरकार जीवित जाति की होती है मृत की तो होती नहीं। अगर सब लाशें हो जाएँ तो सरकार क्या करेगी ? जीवन तो रहना है, तो वह जीवन की प्रेरणा भरनी चाहिए गाँवों वालों में।

हमारे मध्ययुग में हमारे जीवन के प्रति बहुत विरक्ति भर दी गयी, नास्तिकता भर दी गयी। नास्तिकता तो क्या, पर मैं तो नास्तिकता ही कहता हूँ क्योंकि आप जीवन से उठकर जीवन का निर्माण न कराकर कहीं खोखले ईश्वर का विश्वास करें, यह नास्तिकता है। अस्तित्व तो यह है। अगर आप इसे ईश्वरीय न बनाएँ, तो जैसे हमारे गाँव वाले हो गये हैं हम भी मन में बिलकुल गाँव ही वाले हैं, कंगले हैं, विरक्ति-पूर्ण हैं। हमको जीवन पर आस्था नहीं है, हम जीवन को प्यार ही नहीं करते। तो पहले बड़ी भारी बातें है यह कि पृथ्वी के जीवन के प्रति फिर अपनी आंखें झुकावें। हमने तो आंखें उठा दीं ऊपर को, और कुछ भी नहीं मिला। और मैं तो कहता हूँ कि हमारे देश में ऐसे अनेक लोग हैं। मैं उनकी शिकायत नहीं करना चाहता। वे बिल्कुल खोखले हैं और वे अपने जीवन को व्यतीत करने के लिए ऐसा ढंग रचते हैं जिसमें जीवन का सत्य नहीं है, उसमें मानव-सत्य नहीं है। गाँव वालों को जो यह विरक्ति है, बहुत ही बड़ी विरक्ति है। यह विरक्ति हमारे भीतर एक अभिशाप की तरह घुस गयी है। इसलिए सब से पहले गाँव वालों को इस विरक्ति से उठाकर उनका जीवन सुखी बनाना चाहिए। जबकि चींटी इतना चलती है, इतनी सक्रिय है; पक्षी इतना उड़ते हैं, मधुमक्खी इतना काम करती हैं। जीवन की प्रेरणा उनके भीतर है, जो मनुष्य के भीतर अमर जीवन की प्रेरणा जग जाए तो मनुष्य क्या न बना सके अपने देश को, क्या न कर सके ?

मैं तो कहता इतनी ताकत है आदमी के भीतर जितनी कि एटमबम के भीतर भी नहीं। एटम बम कुछ भी नहीं हैं। एटम बम में तो एक कण के बराबर भी ताकत नहीं है क्योंकि वह कुछ बना ही नहीं सकता। मनुष्य के भीतर जो क्रियाशील, सृजनशील, क्रियात्मक, निर्माणात्मक शक्ति है, हम उसी को भगवत-शक्ति कहते हैं। हम भगवान को सृष्टिकर्त्ता के रूप में जानते हैं, उसके सत्य को मानते हैं और वह है निर्माणात्मक शक्ति। तो गाँव वालों में जो भारी कमी है वह इसलिए कि उनमें जीवन का प्रेम नहीं है, पृथ्वी के प्रति प्रेम नहीं हैं।

क्या अपने आप को वह अच्छा नहीं रख सकते। एक मढ़इया होती है उसे अच्छी नहीं रख सकते। लेकिन उसमें वे विश्वास ही नहीं करते और कोई साधु संत गाँव में आते हैं तो मैं देखता उनमें उनका मन रमता है। मैं कोई साधु संतों के खिलाफ नहीं हूँ, बल्कि मैं उनको भारत का एक व्यक्तित्व मानता हूँ। अगर साधु संतों को संगठित किया जाए तो हमारे लिए बहुत बड़ी चीज होगी। वे ताजी हवा पहुँचाएँगे, हमारे भीतर। उनका तो साधना का क्षेत्र है, लेकिन मैं तो यह कहता हूँ कि वह उनको जीवन के प्रेम से ऊपर विरक्ति देते हैं। तो यह सब ऐसी चीजें हैं, ऐसी विचारधाराएँ हैं जिनसे हमें लड़ना इस तरह चाहिए कि कोई उन लोगों से झगड़ा मोल लेने के लिए नहीं, बल्कि उनके मन में जो ये अच्छी भावनाएँ हैं उन्हें जगावें—देश का उदाहरण देकर, सब देश जहाँ कि जागृति फैली है, जीवन फैला है, उनका उदाहरण देकर। तो वे खुद समझ जाएँगे कि हाँ भाई यह चीज ठीक है, या वह चीज गलत है। वे खंडहर, बंजर, अस्थि-पंजर की तरह रहते हैं। कंकालों की तरह हम अपना जीवन व्यतीत करते हैं। आप इस विरक्ति को हमारे भारतवर्ष के गाँवों से और नागरिकों से उठा दें तो यह बहुत भारी बात होगी। मैं कहता हूँ कि हमारे यहाँ जितना व्यभिचार होता है, दुराचार होता है इसलिए होता है कि ठीक प्रकार की सत् दृष्टि नहीं होती। वह ठीक नहीं समझ पाता कि जीवन का कितना आनन्द है। मैं आपसे कहता हूँ और कोई भी जो इसका प्रयोग वह कहेगा कि जितना आनन्द सत्कर्म में है, ठीक तरह से जानने में है, ठीक तरह से रहने में है, इतना हजारों शराब की बोतलों में नहीं हैं, उतना हजारों किसी चीज में नहीं है, अनन्त वैभव में नहीं है। है ही नहीं। सिर्फ यह सद् दृष्टिकोण आदमी को पहचानना होता है और यह तभी सम्भव है जब कि समस्त जाति जग उठती है। और वह कैसे जगती है? कोई ऊपर के जादू से कराया नहीं, इसी तरह से धीरे-धीरे विचारों के संघर्ष से, ठीक चीज को पहचानने से।

एक चीज में सोचता हूँ वह गाँव वालों के लिए बहुत जरूरी देनी है। गाँव वालों को देश-विदेश के बारे में जरूर बताना चाहिए—कहानी के रूप में। उनको ऐसी चीज बतलाना चाहिए जिनमें कि विश्व-कल्याण की सामग्री हो। आप जानते हैं कि बहुत सभ्य देश हैं वे भी भीतर से बहुत खोखले हैं। वे तो आज भारत का मुँह जोह रहे हैं।

हमारा देश जैसा भी है, अधमरा सा और अधजिया-सा, हमको अभी विश्वशान्ति के लिए कुछ कहने का अधिकार है। हमारी जो परम्पराएँ हैं, हमारा जो पुराना दृष्टिकोण है, वह कितना महान् है! अगर हमारे ऊपर सदियों की जमी हुई राख निकल जाय, तो हम जीवन के जलते हुए अंगारों की भाँति निकलें—ऐसे अंगारों की भांति जो चारों ओर प्रकाश फैलाये पर जलाएँ नहीं।

मैं यह कभी नहीं कहता कि मैं आपको गाँव वालों के बारे में कोई बात ऐसी बतला सकता हूँ। मैं भी आज अगर प्रौढ़ शिक्षा के लिए प्रयत्न करूँ और उसके लिए लिखूँ तो मुझको खुद वहाँ जाकर देखना होगा। लेकिन मैं तो दृष्टि की बात कह रहा हूँ। इस दृष्टि से गाँव को देखकर गाँव को जगाना चाहिए। वहाँ जाकर तो आपके सामने अनन्त समस्याएँ मिलेंगी जिनको आप चाहें लोकोत्सव के रूप में रक्खें, चाहें नाटक के रूप में रक्खें, चाहे कहानी के रूप में रक्खें, चाहे कठपुतली के नाच के रूप में रखें, बीसियों तरह से आप सिखला सकते हैं। छोटी-छोटी गोष्ठियाँ कर सकते हैं। लोगों को सिखाने के ढंग कम थोड़े ही है।

मैं तो कहता हूँ जो आप लोग प्रौढ़ शिक्षा साहित्य के निर्माता हैं, इस दृष्टि से देखिए कि हमारे देश में कितनी सदियों के बाद एक ऐसा अच्छा सुनहला, एक निर्माण का, एक सृजन करने का युग आया है। मैं आपसे कहता हूँ कि जितने बड़े लोग हैं सब इसी चीज के लिए तरसते हैं। बड़प्पन का मतलब ही यही है कि आदमी कोई निर्माण का कार्य कर सके। देश-विदेश में कहीं की बात सोचिए, इतिहास में वही लोग रहे हैं जिनमें मनुष्यत्व रहा है, जिन्होंने संसार के लिए कुछ किया है, जीवन के लिए कुछ किया है, समाज के लिए कुछ किया है। जिन्होंने विनाश को नहीं, निर्माण को अपनाया है, सृजन को अपनाया है। हमारे गाँव वाले सृजन के मूर्त रूप हैं। जिसके हाथ में हल है क्या उससे बड़ा कोई निर्माता है सिर्फ वह अपने को जानता नहीं है। जो पृथ्वी को खोद कर अन्न उपजा सकता है उससे बड़ा भारी कोई नहीं है, यह दूसरी बात है कि आज उसकी बड़ी खराब हालत है। हम कई सदियों से परबस रहे हैं, अपने देश का निर्माण नहीं कर पाये हैं। हमारी सरकार अभी दूर-दूर, गाँव-गाँव में बिजली नहीं पहुँचा पायी, ट्रैक्टर नहीं पहुँचा पायी है। शायद अभी उस सामूहिक

कृषि वगैरह की योजना पर हमारी आँख प्रयोग भी नहीं कर पायी है कि कौन सा रूप धारण करना है, किस रूप से वह यहाँ होगा। बीसियों बातें हैं। ऐसी अनेक सम्भावनाएँ हैं, अनेक प्रश्न हैं भविष्य के गर्भ में जिनको सरकार अपने ढंग से पँचवर्षीय योजना के रूप में हल कर रही है। लेकिन इन पंचवर्षीय योजनाओं से ज्यादा भारी योजनाएँ हमारे यहाँ के व्यक्ति हैं, गाँव वाले हैं। इन सब की एक-एक योजना है। हमें इनका निर्माण करना है।

एक अकेले गांधी जी कितना काम करते थे ! एक अकेले टैगोर ने कितना काम किया ? साहित्य में भी ऐसे ही एक व्यक्ति, जिसमें लगन हो जाए, जिसको ठीक रास्ता मिल जाए, वह कितना ही काम कर सकता है। आज की इस सामूहिकता के युग में जब हजारों हाथ एक चीज को करते हैं, हजारों पाँव एक चीज को करते हैं, यह कहना कि दो हाथ-पाँव नहीं कर सकते, गलत है। सामूहिकता को उसी युग में आदमी समझ पायगा जबकि वह व्यक्ति-व्यक्ति की ताकत को समझ पायगा। जो सामूहिकता व्यक्ति की ताकत का शोषण कर देगी वह 'हाउस आफ लार्ड्स' की तरह 'कोलैप्स' हो जायगी, गिर पड़ेगी।

तो अपने देश में एक सामूहिक जीवन, एक सामाजिक जीवन पैदा करने के लिए भी आपके लिए मैं यह बहुत ही जरूरी बात मानता हूँ कि व्यक्ति की शक्ति को जगाइए। जो साहित्य व्यक्ति की शक्ति को जगाता है ऐसी शक्ति ही समाजोन्मुख शक्ति हो, ऐसी शक्ति नहीं जो व्यक्ति के, समाज के विरुद्ध हो। वह तो बहुत ही हानिकारक शक्ति है। सोचता हूँ कि गाँवों में जितना बड़ा क्षेत्र काम करने का है उतना कहीं नहीं। नगरों में तो मोटे-मोटे धन्धे हैं। इतने विचार हैं, इतनी धाराएँ हैं, इतनी बातें हैं कि उनमें तो आपको, जिसे अवरोध कहते हैं, वह मिलेगा। लेकिन गाँव में ऐसा नहीं है। मैंने देखा है कि गाँव वालों के पास अगर एक बाजीगर भी आ गया तो वे इतनी संख्या में इकट्ठे हो जाते हैं कि शहर में तो कोई पूछता ही नहीं। उनके लिए हर एक चीज ऐसी है। फिर वहाँ अगर अच्छी चीजें चली जाएँ, तो आप लोग, जो उनके घनिष्ठ सम्पर्क में आते हैं, उनके जीवन-निर्माण करने में सहायक हो सकेंगे।

मैं कहता हूँ कि जो यह बड़ा साहित्य, विश्व-साहित्य है, इसमें भी आपका साहित्य बड़ा भारी सहयोग देगा। गाँव वालों की सम-

स्थाओं को उनके ही भीतर से खुद ही देख कर, आप उनमें उनकी भूली हुई मनुष्यता को, जो खो नहीं गयी है, फिर से जगाएँगे। इस तरह आप भारत के लिए उपयुक्त भारतवासी पैदा करेंगे। हम लोगों का तो काल्पनिक कहानी आदि लिख कर समय निकल जाता है। आपका तो हमसे कहीं अधिक ज्यादा उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। मैं स्वयं इसके लिए बहुत ही 'एस्पायर' करता हूँ कि मैं कभी एक ऐसी चीज लिख सकूँ कि मैं अपने देश-देश को एकता के पाश में गूंथ सकूँ और उसको एक ऐसी दृष्टि दे सकूँ, खुद पहले वह दृष्टि प्राप्त करके, कि जिसका मानव-जीवन के निर्माण में कुछ मूल्य हो। इन थोड़े से शब्दों के साथ अपना भाषण समाप्त करता हूँ। बस।

गोष्ठी में आयोजित व्याख्यान-माला के विषय

१—नवसाक्षर से हमारा तात्पर्य

२—नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की आवश्यकता

३—नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की विशेषताएँ

४ नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की भाषा

५—नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की भाषा और विषय-वस्तु

६—प्रौढ़ शिक्षा और प्रौढ़ साहित्य

७—प्रौढ़ शिक्षा और नवसाक्षरोपयोगी साहित्य

८—प्रौढ़ मनोविज्ञान

९—प्रौढ़ साहित्य

१०—प्रौढ़ साहित्य और चित्र

११—विदेशों में प्रौढ़ शिक्षा और प्रौढ़ साहित्य

१२—समाज शिक्षा और उनके उद्देश्य

१३—समाज शिक्षा का विषय और साहित्य

१४—आधारभूत शिक्षा (फंडामैंटल एजूकेशन)

१५—लोक साहित्य का इतिहास

१६—लोक गीतों की सामाजिक व्याख्या

व्याख्यानों के सारांश

श्री चन्द्रमोहन नाथ चक, शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश

दिनांक १८-१-५८

श्री माहेश्वरी जी और प्रतिनिधियो,

आपने मुझे यहाँ बुलाया, इसके लिए कृतज्ञ हूँ। जो गोष्ठी में सम्मिलित हैं, उनसे मैं मिलना चाहता था। देखना चाहता था कि क्या हो रहा है। मेरे पास आपको बताने के लिए कोई चीज़ नहीं। नवसाक्षरों के लिए शिक्षा के रूप में वह चीज़ तो नहीं होगी जो विद्यालयों के शिक्षार्थियों के लिये होती है। कैसी पुस्तकें होंगी, कैसा विषय या चित्र होंगे, ये चीजें ऐसी हैं जो यहाँ सोची जा रही हैं। किताब कहने के लिए साधारण ही दिखलाई देती है किन्तु वह कितनी कठिनाई से तैयार होती है यह और बात है। अपने विचारों को दूसरे के मस्तिष्क तक पहुँचाना बड़ा कठिन होता है क्योंकि प्रत्येक आदमी की विचारधारा भिन्न-भिन्न होती है। बहुत सी चीजें अपने ही दिमाग से निकलती हैं। किसी को सिखाना बड़ा कठिन होता है। नवसाक्षर को सिखाना तो और भी कठिन होता है क्योंकि नवसाक्षर तो शब्दों से ही लड़ाई करता चलता है। उसे कठिनाई होती है। किसी नई भाषा को सीखने में कितनी कठिनाई होती है—इसका मुझे व्यक्तिगत अनुभव है। जर्मन सीखने के लिए मैंने एक गणित की ही पुस्तक देखी। उसके सौ पेज पढ़े लेकिन उसमें लगे हुए समय को देखकर मुझे उससे ऐसा जान पड़ा कि समय का बड़ा अपव्यय हुआ। मैंने कठिन शब्दों को डिक्शनरी में देखा। दिमाग में हरकत हुई। इसी तरह आगे एक ड्रामा से मैंने फ्रेंच पढ़ने की कोशिश की। मैंने अनुभव किया कि इसके लिए ड्रामा पढ़ना लाभकर था। ड्रामा में स्थिति स्पष्ट रहती है। अतः शब्दार्थ स्वयं ही स्पष्ट होते जाते हैं। भाषा में योग्यता बढ़ी। यदि उसके स्थान पर दर्शन की पुस्तक होती तो न तो स्थिति का ज्ञान होता और न भाषा समझ में आती।

यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि आपका प्रौढ़ पाठक अक्षर नहीं जानता। अतः आप ऐसा लिखें जिससे स्थिति स्पष्ट होती चले

और उसे आप की लिखी हुई रचनाओं को पढ़ने में कठिनाई न हो। नये आदमी के लिए आप जितना भी सरल लिखेंगे, उतना ही उसे लाभ होगा।

मैं देखता हूँ कि कभी-कभी पढ़ाने वाले को, भी यह संदेह होता है कि यदि वह शिक्षार्थी को सरल चीज बताने लगे तो सोचता है कि उसे यथेष्ट लाभ नहीं हो रहा। पर, ऐसी बात नहीं है। लाभ उसे होता है। खैर, मैं यहाँ कोई भाषण देने के लिए नहीं आया था फिर भी इतना सब कुछ मैंने प्रस्ताव रूप में आपके सामने रखने की चेष्टा की है। आशा है कि आप इन बातों को ध्यान में रखकर अपने काम में अग्रसर होंगे। यों आप स्वयं विद्वान हैं और लेखक भी।

डा० सीतावर शरण, प्रधानाचार्य, सेंट्रल पैडॉगाजीकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद।

दिनांक २०-१-५८ के प्रातःकालीन अधिवेशन में डा० सीतावर शरण, प्रधानाचार्य, सी० पी० आई० ने "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की भाषा एवं विषय वस्तु" पर भाषण दिया। डा० शरण ने बतलाया कि इस प्रकार के साहित्य में शब्द-चयन पर बहुत ध्यान देना चाहिए। शब्दों द्वारा भाषा को सुन्दरतम् बनाने के लिए उन्हें बहुत नाप तौल कर रक्खा जाए। भारतीय संस्कृति के महत्व के विचार से कठिन शब्दों का प्रयोग न किया जाए, भाषा के अनुकूल ही शैली प्रयोग में लायी जाए। किसी अन्य भाषा से अनुवाद करने में शब्दानुसार अनुवाद न किया जाए प्रत्युत "अर्थ का सार" ही दिया जाए। आपने विषय वस्तु के सम्बन्ध में व्यक्त किया कि धार्मिक साहित्य के सृजन के अतिरिक्त सामाजिक शास्त्र सम्बन्धी साहित्य का भी निर्माण भारतीय नवसाक्षरों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। केवल उन ऐतिहासिक तत्वों को दिया जाए कि जो साम्प्रदायिकता से दूर हो और जातीय एकता को बल दें। मिथ्या गर्व का प्रदर्शन वांछनीय नहीं है। आपने इस बात पर बहुत बल दिया कि "कहो तो सच कहो न तो न कहो" अर्थात् साहित्य-सृजन में अथवा इतिहास—लेखन में भी सत्य और अहिंसा ही हमारे आदर्श रहें।

श्री प्रभाकान्त शुक्ल, जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद

दिनांक २१-१-५८ को अपराह्न में श्री प्रभाकान्त शुक्ल, जिला विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद का 'आधारभूत शिक्षा' पर भाषण हुआ। आपने सर्वप्रथम आधारभूत शिक्षा की संक्षिप्त ऐतिहासिक रूपरेखा प्रस्तुत की। तत्पश्चात् आपने बताया कि नव साक्षरों के लिए लिखे जाने वाले साहित्य के दो प्रमुख कारण होते हैं :—

(१) 'फालो अप' के लिए
(२) ज्ञान विस्तार के लिए

यदि साहित्य 'फालो अप' के लिए है तो उसमें विषय की शैली की प्रधानता होगी, और यदि साहित्य ज्ञान विस्तार के लिए है तो उसमें शैली की अपेक्षा विषय की प्रधानता रहेगी। किन्तु आपने यह भी बताया कि इस विभेद की कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची जा सकती। हाँ, जो भी विषय नवसाक्षरों के लिए प्रदान किये जाएँ, वे शुद्ध हों और सरल ढंग से लिखे हुए।

नवसाक्षरोपयोगी साहित्य की विशेषताओं की ओर गोष्ठी का ध्यान आकृष्ट करते हुए आपने बताया कि इस प्रकार का साहित्य यथा सम्भव :—

(१) आकर्षक हो,
(२) रोचक हो,
(३) दैनिक जीवन से सम्बन्धित हो,
(४) सही हो,
(५) पढ़ने में सरल हो,
(६) समझने में सरल हो।

श्री विश्वम्भर नाथ पाण्डेय, भूतपूर्व अध्यक्ष नगर पालिका, प्रयाग

दिनांक २३-१-५८ को गोष्ठी में 'प्रौढ़ शिक्षा' पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए श्री विश्वम्भर नाथ जी पांडेय ने बताया कि 'प्रौढ़ शिक्षा' का प्रश्न केवल भारत का ही प्रश्न नहीं है, प्रत्युत समस्त विश्व की समस्या है।

किन्तु विश्व के अन्य देश इस समय तक साक्षरता के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति कर चुके हैं। रूस में निरक्षरता का प्रतिशत इस समय

केवल ४.७ रह गया है और चीन का ३६'८ जबकि १६४१ में चीन में यह प्रतिशत ८२.४ था।

'प्रौढ़ शिक्षा' की ओर अग्रसर होने पर सर्वप्रथम जो समस्या आती है, वह है—प्रौढ़ों का इस शिक्षा की ओर से उदासीन होना जिसके सामान्यतः निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) दैनिक कार्य के अनन्तर प्रौढ़ अपने को अत्यधिक थका हुआ अनुभव करता है।

(२) प्रचाराभाव।

(३) पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति में उनकी व्यस्तता।

(४) आर्थिक लाभ की आशा न होना।

(५) उपयोगिता की अनिश्चितता।

(६) इस आयु में रोजगार एवं सुरक्षा की अनावश्यकता।

(७) असुविधापूर्ण वातावरण।

(८) अत्यधिक आलस्य।

(९) प्रौढ़ शिक्षा में नीरसता।

(१०) चालीस वर्ष की आयु पर अपने को अत्यधिक वृद्ध समझ लेने की भावना।

(११) पारियों का बदलना तथा नियत समय के उपरान्त कार्य से अतिरिक्त अर्थलाभ। अतः समयाभाव।

(१२) अज्ञान समझे जाने का भय।

(१३) पाठशाला खोलने के निमित्त शिक्षार्थियों की न्यूनतम संख्या का प्रतिबन्ध।

(१४) पाठशालाओं की अनुपयुक्त स्थिति।

(१५) महिलाओं को बाल-बच्चों और रोटी-पानी से ही अवकाश न मिलना।

(१६) अध्यापकों द्वारा दिये गये 'गृहकार्य' की समस्या।

'प्रौढ़ एकत्रित कैसे हों'—पर प्रकाश डालते हुए आपने व्यक्त किया कि एतदर्थ 'भेट' प्रथा का अनुसरण किया जाय जिससे शिक्षक को शिक्षार्थी इकट्ठे करने की समस्या का सामना न करना पड़े। फैक्ट्रियों में एक घंटे प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम अनिवार्य बना दिया जाय। प्रौढ़ों में पठनाभिरुचि एवं सद्भावोत्पादन किया जाए। तदनन्तर अक्षर ज्ञान का कार्य प्रारम्भ हो।

आपने बताया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की 'सेलेक्ट कमेटी' की १८३२ में प्रकाशित आख्या के अनुसार भारत की शिक्षा का प्रतिशत अन्य देशों की अपेक्षा अत्युन्नत था। केवल बंगाल में ही प्रति ४०० जनसंख्या पर एक विद्यालय था और ऐसे विद्यालयों की संख्या ८० हजार थी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इलाहाबाद में १२०० बारह सौ 'मकतब एवं पाठशालाएँ' थीं।

अंग्रेजों ने राजनीतिक उद्देश्य से भारत को १०० वर्ष के अन्तर्गत निरक्षर बना दिया परन्तु हमारे देश में शिक्षा का यह क्रम मौखिक रूप से अग्रसर रहा। अब उसे 'अक्षर ज्ञान' में परिणत करना है। भारतीय निरक्षर के पास 'विवेक का तराजू' है, उसे जरा 'कुरेद' दिया जाये तो उसके भीतर से कबीर, तुलसी, सूर, मीरा, पुराण, महाभारत एवं रामायण की बात निकलती है। वस्तुतः सन्तों ने सदैव जनता की बात—उनके मन की बात—को अपनी वाणी का रूप दिया। यही आज की आवश्यकता है।

हिन्दी भाषा के शिक्षण की दृष्टि से प्रौढ़ों के दो वर्ग बताये—निरक्षर प्रौढ़ और विद्वान् प्रौढ़। इस प्रसंग में उन्होंने अन्य भाषा-भाषियों से सम्पर्क में आने पर प्राप्त हुए अनुभवों की भी चर्चा की। उन्होंने कहा कि हिन्दी वालों का दायित्व महान् है। हिन्दी का स्वतंत्र विकास होना चाहिए। दूसरों की कही हुई बात भी कही जाए तो उसे आत्मसात् करके मौलिक ढंग से प्रस्तुत किया जाए। सभी भाषा में सामान्यतः प्रचलित शब्दों का संग्रह तैयार किया जाना अधिक उपयोगी होगा।

प्रौढ़ साहित्य के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए पाण्डेय जी ने कहा प्रौढ़ साहित्य का आधार निम्नलिखित है :—

(१) प्रौढ़ साहित्य बच्चों के साहित्य की बुनियाद पर न लिखा जाए क्योंकि बालकों में ज्ञान प्राप्ति की उत्कट जिज्ञासा अजस्र आकांक्षा होती है। प्रौढ़ को जीवन सम्बन्धी पर्याप्त अनुभव होता है—वह बहुत सी बातें जानता है। उनका शब्द भंडार विकसित होता है।

(२) विचार प्रौढ़ हों और शब्द सरल। प्रचलित शब्दों का प्रयोग हो।

(३) प्रौढ़ों की रुचि के अनुसार उनकी वास्तविक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत किये जाएँ।

(४) जीवन स्तर में पूर्णता प्रदान करने वाला साहित्य हो। विद्वता प्राप्ति उसका लक्ष्य नहीं।

(५) निकट भविष्य में लाभ प्रदान करने वाला ज्ञान प्रदान किया जाये।

(६) परिवर्तित होती हुई परिस्थितियों के अनुसार उन्नत बना सकने की क्षमता लाने वाला ज्ञान कराया जाए जिससे वे वातावरण से लाभ उठा सकें।

(७) आशावादी प्रगतिशील साहित्य हो।

(८) सामुदायिक भावना उत्पन्न करने वाला ज्ञान दिया जाए।

(९) ऐसी जानकारी करायी जाए जिससे वह अपने लिए विचार कर सके, योजना बना सके और उसे कार्यान्वित कर सके।

प्रौढ़ पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में आपने बताया कि पाठ्यक्रम बच्चों के पाठ्यक्रम से भिन्न हो। उसमें सब विषयों का समावेश न किया जाए। पाठ्यक्रम सीमित हो और यथासम्भव एक ही पुस्तक के माध्यम से समस्त सामान्य बातों का ज्ञान कराया जाए। भारत में प्रौढ़ शिक्षा विशेष ध्यान देने योग्य बात है। यहाँ की सामाजिक स्थिति, अतः सामाजिक कुरीतियाँ—बन्धनों तथा रूढ़ियों को दूर करने वाला एवं विश्वबन्धुत्व की भावना को जागृत करने वाला साहित्य प्रौढ़ों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। विश्व शान्ति का संदेश उसमें हो।

श्री बंशीधर श्रीवास्तव, आचार्य, राजकीय जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद।

दिनांक २४-१-५८ को गोष्ठी के प्रतिनिधियों के समक्ष श्री बंशीधर श्रीवास्तव का 'सामाजिक शिक्षा का विषय और साहित्य' पर भाषण हुआ। श्री बंशीधर जी ने कहा कि प्रौढ़ शिक्षा की संकल्पना में आज बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। साक्षरता के अपने छोटे दायरे से निकल कर वह सामाजिक शिक्षा का व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है। पहले उसका प्रयोजन केवल औपचारिक था और व्यक्ति को साक्षर बनाकर और उसके लिए थोड़ा बहुत लिखने पढ़ने का प्रबन्ध कर वह अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेती थी। आज उसका लक्ष्य प्रौढ़ों को इस प्रकार की बात है शिक्षा देना हो गया है जिससे वे व्यक्ति के रूप में,

और समाज के एक अंग के रूप में, अपनी अभाव-ग्रस्त दशा से ऊपर उठकर पहले से अधिक सम्पन्न और प्रसन्न जीवन व्यतीत कर सकें।

संकल्पना में इस मौलिक परिवर्तन के रूप को समझने के लिए विद्वान वक्ता ने विदेशों में हुए प्रौढ़ शिक्षा के आंदोलनों के उन आधारभूत सिद्धांतों का विश्व-रूप से विवेचन किया जिनसे आज की सामाजिक शिक्षा की रूपरेखा निर्मित हुई है। इस सम्बन्ध में उन्होंने रूस के साक्षरता आंदोलन, कैनाडा के ऐन्टिमोनिश आंदोलन, मेक्सिको के सांस्कृतिक सचल दल, डेनमार्क और स्वीडेन के जनता विद्यालय तथा इंगलैंड के गाँव कालिजों का उल्लेख किया।

तदनन्तर विद्वान वक्ता ने बताया कि आज सामाजिक शिक्षा के निम्नांकित प्रयोजन हैं :—

(१) औपचारिक
(२) व्यावसायिक
(३) स्वास्थ्य-ज्ञान
(४) सामाजिक कौशल की शिक्षा
(५) मनोरंजन का आयोजन
(६) आत्म-विकास

श्री बंशीधर ने बताया कि सामाजिक शिक्षा के इन प्रयोजनों ने सामाजिक शिक्षा की संकलपना को स्पष्ट कर दिया है। इस संकलपना की रूपरेखा को समझ लेने से साहित्य निर्माण का काम सरल हो जायगा। इस संकलपना के निम्नांकित सिद्धान्त हैं :—

१—प्रौढ़ शिक्षा सामाजिक संश्लेषण का संवर्धन और विकास करना चाहती है।

स्वार्थों का संघर्ष आधुनक भारतीय समाज का प्रमुख लक्षण हो रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति का और समूह-समूह का पार्थक्य बढ़ रहा है—दो भाषा-भाषियों में पार्थक्य है, धनी और गरीब में पार्थक्य है। सामाजिक शिक्षा का कार्य इस पार्थक्य को कम कर पारस्परिक एकता उत्पन्न करना है। अतः हमारा कर्तव्य ऐसे साहित्य का सृजन करना है जो इस पार्थक्य को कम करे।

२—सामाजिक शिक्षा का दूसरा लक्ष्य राष्ट्रीय साधनों की संरक्षता और अभिवृद्धि करना है।

अतः सामाजिक शिक्षा के लिए साहित्य लिखने वालों को ऐसे साहित्य का सृजन करना है जो हमारे देश के प्राकृतिक साधनों के संरक्षण और अभिवृद्धि का मार्ग बताये और हमारी जनशक्ति का विकास कर हमारी जनता का जीवनमान उन्नत करे।

राष्ट्रीय साधनों की अभिवृद्धि और जनशक्ति का विकास तो प्रस्तावना मात्र है। सामाजिक शिक्षा का वास्तविक कार्य तो मनुष्यों को ऐसी शिक्षा देना है जिससे वे स्वेच्छा से इन साधनों का प्रयोग सब के हित और सुख के लिए कर सकें।

(४) सामाजिक शिक्षा का सबसे प्रमुख लक्ष्य लोगों को इस बात के लिये तैयार करना है कि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को अपने समूह, जाति और देश के लिए प्रसन्नतापूर्वक त्याग कर दें। जो 'साहित्य' हमारे सामने यह आदर्श उपस्थित करेगा, और हममें इस कर्तव्य बुद्धि को जागृत करेगा वही साहित्य श्रेष्ठ है।

श्री ज्योतिप्रसाद "निर्मल" प्रयाग

दिनांक ५-२-५८ को गोष्ठी में हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ लेखक एवं पत्रकार श्री ज्योतिप्रसाद "निमल" जी का भाषण हुआ। निमल जी ने सन् १६२६ से १६५२ ई० तक २६ वर्षों के अपने साहित्यिक अनुभव तथा लेखन परिचय पर प्रकाश डालते हुए व्यक्त किया कि प्रौढ़ शिक्षा का इतिहास अति प्राचीन है। प्राचीन काल में यद्यपि लोग आधुनिक तथा अद्यतन शिक्षण पद्धतियों से अपरिचित थे किन्तु उस समय भी हमारे भारतवर्ष में ८० प्रतिशत साक्षरता थी। उस युग में चारण एवं भाट मौखिक गीतों, लोकगीतों, तथा वीर गीतों द्वारा शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करते थे। तदनन्तर कथावाचकों, संतों तथा पंडितों आदि द्वारा शिक्षा का प्रचार होता रहा। अशोक काल तथा बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षुओं ने भी धार्मिक शिक्षाओं, उपदेशों तथा प्रवचनों द्वारा शिक्षा के प्रसार में पूर्ण सहयोग दिया। मुस्लिम काल में शेरशाह सूर द्वारा मकतबों का संस्थापन तथा संचालन प्रौढ़ शिक्षा प्रसार के दृष्टि-कोण से ही किया गया था। मुगल सम्राट अकबर भी एतदर्थ

प्रयत्नशील रहा। इस प्रकार हमारी प्रौढ़-शिक्षा का इतिहास अति प्राचीन है।

अँगरेजी राज्य में प्रौढ़ शिक्षा का बड़ा ह्रास हुआ। सन् १६३६ में देश के कुछ प्रान्तों में काँग्रेस का मंत्रिमंडल होने पर देश के कर्णधारों ने प्रौढ़ शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया। उत्तर प्रदेशीय शिक्षा प्रसार विभाग ने इस दिशा में सक्रिय कदम उठाया। तदनन्तर सन् १६४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् प्रौढ़ शिक्षा को देशोत्थान के लिए अति आवश्यक समझा गया। यथार्थतः आज नये राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रौढ़-शिक्षा अति वांछनीय है। वयस्क मताधिकार द्वारा अभीष्ट की सिद्धि प्रौढ़-शिक्षा के व्यापक प्रचार एवं प्रसार पर ही निर्भर है। इसके अतिरिक्त हमारे देश के भावी कर्णधारों की समुचित शिक्षा-दीक्षा के लिए अभिभावकों की शिक्षा अति आवश्यक भी है। गणतंत्र राज्य के सुरक्षण तथा संपोषण के लिए भी प्रत्येक नागरिक को देश की परिस्थितियों आदि का पूर्ण ज्ञान होना भी अत्यावश्यक है और यह देश में सांगोपांगीय शिक्षा प्रसार पर ही निर्भर है। इस दृष्टिकोण से श्री निर्मल जी ने वर्तमान युग में अपने देश के लिए प्रौढ़-शिक्षा की उन्नति को अत्यन्त ही आवश्यक बताया।

नवसाक्षरोपयोगी साहित्य के निर्माण के लिए भाषा तथा विषय के सम्बन्ध में अपने निजी विचार प्रकट करते हुए निर्मल जी ने गोष्ठी के सदस्यों से निवेदन किया कि हिन्दी वैधानिक रूप में राष्ट्रभाषा के उच्चासन पर विराजमान हो चुकी है। अतः हिन्दी को व्यापक, सर्वप्रिय, लोकप्रिय तथा अक्षुण्ण एवं अमर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि लेखक लोकभाषा को अपनाए। शैली में ऐसे सरल, स्पष्ट, बोधगम्य शब्दों का समावेश हो जिनमें सांस्कृतिक एकता तथा स्पष्टवादिता हो। ऐसे व्यवहृत शब्दों को अधिकाधिक स्थान देना चाहिए जो अन्य प्रान्तीय तथा क्षेत्रीय भाषाओं के बुनियादी शब्द हों।

हमें शब्द-ग्रहण में अधिकाधिक उदार दृष्टिकोण रखना चाहिए। हमारे आस्तिक धर्म में जब चार्वाक जैसे नास्तिकों का अमर स्थान है तो हमें भी चाहिए कि राष्ट्रभाषा हिन्दी की उन्नति के लिए अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को भी अपनाएँ।

डा० श्याम नारायण मेहरोत्रा, संचालक, मनोविज्ञान केन्द्र, इलाहाबाद ।

दिनांक १२-२-५८ को गोष्ठी के समक्ष मनोविज्ञान केन्द्र, इलाहाबाद के संचालक, डाक्टर श्याम नारायण मेहरोत्रा का "मनोविज्ञान" पर सारगर्भित भाषण हुआ। डाक्टर साहब ने मनोविज्ञान की परिभाषा एवं व्याख्या देते हुए प्रौढ़ शिक्षा के आदर्शों एवं उद्देश्यों पर पूर्ण प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि प्रौढ़ साहित्य सृजन के लिए प्रौढ़ों की अनुभूत आवश्यकताओं को दृष्टिकोण में रखना अति वांछनीय है। अवस्थानुकूल प्रौढ़ों की आवश्यकताएँ भी भिन्न होती हैं। एक २० वर्ष की अवस्था के प्रौढ़ और ३५ वर्ष की अवस्था के प्रौढ़ की आवश्यकताओं में महान् अन्तर होता है। उन्होंने बताया कि अधिक अवस्था का प्रौढ़ अपनी शिक्षा में उतनी रुचि नहीं लेता है जितनी रुचि अपने बच्चों की शिक्षा में। वह आत्म-निर्माण के साथ-साथ अपने बच्चों का भी सुधार चाहता है। अतः लेखकों का कर्तव्य है कि प्रौढ़ों की माँग के अनुकूल ही साहित्य की रचना करें। श्री मेहरोत्रा ने आगे कहा कि शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य प्रौढ़ के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। अतः साहित्य निर्माण की सफलता का मापदंड यह है कि साहित्य ऐसा हो जो प्रौढ़ की मौलिक प्रवृत्तियों को उद्बुद्ध कर उसके जीवन-दर्शन को परिष्कृत करे।

डाक्टर मेहरोत्रा ने अपने इंगलैंड के शिक्षा सम्बन्धित अनुभवों की चर्चा करते हुए, यह स्पष्ट किया कि प्रौढ़ों की समस्याओं के निराकरण हेतु ऐसे साहित्य का निर्माण किया जाए जो प्रौढ़ों के व्यावहारिक जीवन उनकी आस्था तथा प्रक्रियाओं से पूर्णरूपेण संगत हो।

डा० धीरेन्द्र वर्मा, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ।

दिनांक १३-२-५८ को प्रौढ़-साहित्य-निर्माण गोष्ठी के प्रतिनिधियों के समक्ष, प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष, डा० धीरेन्द्र वर्मा का सारगर्भित, प्रौढ़ोपयोगी तथा विद्वतापूर्ण भाषण-वार्ता हुई। आपने अत्यन्त ही सरल एवं स्वाभाविक शैली में गोष्ठी के प्रतिनिधियों

की शंकाओं का समाधान करते हुए सुझाव दिया कि नवसाक्षरों के साहित्य में सरल खड़ी बोली का ही प्रयोग किया जाए क्योंकि हिन्दी १८ करोड़ जनता की भाषा है। कार्यक्षेत्र की व्यापकता, देश संगठन तथा प्रौढ़ों के अनुकूल भाषा के दृष्टिकोण से खड़ी बोली ही सर्वोत्तम है। क्षेत्रीय बोलियों को अपनाने से राष्ट्रीय एकता को क्षति पहुँच सकती है।

शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में डाक्टर साहब ने यह प्रकाश डाला कि हम शब्दों के उद्गम की ओर ध्यान न देकर उनको जन साधारण में व्यावहारिक तथा प्रचलित होने के नाते स्थान दें। आज हिन्दी के विकास का संधिकाल है। इस काल में हिन्दी के उत्थान तथा विकास के लिए अतिवर्जित शब्दों का प्रयोग न करना ही हितकर रहेगा। आपने शब्दों के शुद्ध तथा अशुद्ध रूपों के विषय में प्रकट किया कि शब्दों का रूप न शुद्ध कहा जा सकता है और न अशुद्ध। देशकाल, परिस्थिति और कालान्तर के अनुसार ही शब्दों का प्रचलित रूप ही मान्य एवं ग्राह्य है। हम लोगों को संस्कृत-व्याकरण अथवा अँगरेजी-व्याकरण के ढाँचे के अनुसार हिन्दी शब्दों तथा वाक्यों के रूप एवं कलेवर में अनावश्यक परिवर्तन नहीं करना है। हमें अनावश्यक अनुकरण एवं प्रभाव से पूर्ण मुक्त होकर यथासम्भव शब्दों में एकरूपता लाने का प्रयास करना चाहिए। धार्मिक क्षेत्रों की एक विशेष भाषा होती है। अतः लेखकों का कर्तव्य है कि नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-सृजन में साधारण जनता के आस्थापूर्ण शब्दों को प्रयोग करने में संकोच न करें।

संक्षेप में, डाक्टर धीरेन्द्र वर्मा ने प्रौढ़ों के लिए सरल, स्वाभाविक, व्यावहारिक एवं प्रचलित शब्दों का प्रयोग ही प्रौढ़ साहित्य निर्माण हेतु उपयुक्त बताया।

श्री कस्तूरचंद गुप्त, सम्पादक "उजाला", साक्षरता निकेतन लखनऊ।

दिनांक १४-२-५८ को पूर्वाह्न में प्रौढ़ साहित्य निर्माण गोष्ठी के प्रतिनिधियों के समक्ष शिक्षा प्रसार विभाग के अंतर्गत "उजाला" पत्र के सम्पादक एवं प्रौढ़-साहित्य के मर्मज्ञ, लेखक, श्री कस्तूरचंद गुप्त का "प्रौढ़ साहित्य" पर भाषण हुआ।

आपने शब्दावली के सम्बन्ध में बताया कि किस प्रकार की रिचार्ड और श्री थोनेडाइक, ने अपनी-अपनी शब्दावली तैयार कीं। अभी हाल ही में साक्षरता निकेतन, लखनऊ ने १५०० शब्दों की एक शब्दावली तैयार की है। आपने यह भी बतलाया कि शब्दावली तैयार करते समय जनता के बोलने, लिखने और पढ़ने के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। शब्दावली के प्रयोग के सम्बन्ध में आपने बतलाया कि प्रत्येक ५० शब्दों के पीछे एक नया शब्द अवश्य प्रयोग किया जाए। नये शब्द को कम से कम पाँच बार प्रयोग करना चाहिए।

आपने डा० रुडुल्फ फलेश के प्रौढ़-साहित्य सम्बन्धी फारमुले पर भी प्रकाश डाला और बताया कि वाक्यों के निर्माण के निमित्त १०० शब्द चुने जाएँ। उनसे बनने वाले वाक्य अधिक से अधिक हों और प्रत्येक वाक्य में कम से कम शब्द हों। इस सम्बन्ध में रोचक साहित्य के निर्माण के निमित्त आपने बतलाया कि कथोपकथन में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का अधिकाधिक प्रयोग वांछनीय है।

तदुपरान्त आपने बतालाया कि पुस्तकों के परीक्षण हेतु रचना को खँडों में विभाजित कर लिया जाए। उसे सुनाया जाए और श्रोतागण से प्रश्नों द्वारा रचना के स्तर को आँका जाये।

डाक्टर मिसेज, फिशर संचालिका, साक्षरता निकेतन, लखनऊ

दिनांक १५-२-५८ को पूर्वाह्न में गोष्ठी के प्रतिनिधियों के समक्ष, साक्षरता निकेतन, लखनऊ तथा समाज लेखन संस्था की सञ्चालिका, डाक्टर मिसेज फिशर का सारगर्भित भाषण हुआ। गोष्ठी की कार्य-प्रगति पर अति सन्तोष प्रकट करते हुए डाक्टर फिशर ने व्यक्त किया कि आज वस्तुतः प्रौढ़ साहित्य निर्माण कार्य सारे विश्व में व्याप्त एक नितान्त नवीन आन्दोलन है। प्रौढ़ साक्षरता एवं शिक्षा से इसका अभिन्न सम्बन्ध है। दुर्भाग्य से अधिकांश लोग इसे एक साक्षरता आन्दोलन ही समझते हैं। पहले भी साक्षरता सम्बन्धी ऐसे प्रयत्न किये गये किन्तु वे सफल न हो सके। अतः इस क्षेत्र में मनोरथ की प्राप्ति हेतु समुचित सतर्कता तथा सावधानी वांछनीय है।

श्रीमती फिशर ने अपने भाषण में आगे कहा कि नवसाक्षरों को अनुकूल साहित्य प्रदान करने के लिए दो बातों पर विशेष ध्यान दिया

जाए—प्रथम नवसाक्षरों की अनुभूत आवश्यकताओं, सुरुचियों तथा पठन-क्षमता एवं योग्यता की बोधगम्यता। द्वितीय लिखित शब्दों द्वारा उनकी आवश्यकताओं तथा रुचियों की पूर्ति हेतु समविधियाँ। डाक्टर फिशर का विचार था कि नवसाक्षरों के लिए कथा-शैली सर्वोत्तम तथा सुलभतम है। अतः उनके लिए आवश्यक साहित्य निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाय।

श्रीकृष्णदास, साहित्य सम्पादक, अमृत पत्रिका, इलाहाबाद।

दिनांक १५ तथा १७-२-५८ को अपराह्न में हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक एवं पत्रकार, श्री श्रीकृष्णदास ने लोक साहित्य पर एक वार्ता प्रस्तुत की।

लोक साहित्य निर्माण के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए श्री दास ने बतलाया कि अपने प्रदेश में इस दिशा में लगभग अस्सी वर्ष पूर्व कार्य प्रारम्भ हुआ था। बंगाल प्रदेश में इस सम्बन्ध में सबसे अधिक साहित्य की सर्जना हुई है। फलस्वरूप वहाँ की साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधि में ही परिवर्तन हो गया है।

विद्वान वक्ता ने आगे कहा कि उत्तर प्रदेश में खड़ी बोली के प्रसार एवं प्रभाव से क्षेत्रीय बोलियों के लोक गीत पृष्ठभूमि में पड़ गये हैं। अब भी लोक गीत सम्बन्धी अपार निधि महिलाओं के कंठों में ही सुरक्षित है। वस्तुतः लोकगीत का सम्वन्ध पूरी मानव जाति से है, और समस्त शास्त्रीय कलाओं का आधार लोक-साहित्य एवं लोक-कला ही है।

श्री श्रीकृष्णदास ने बतलाया कि बोलियों के आधार पर उत्तर प्रदेश भी भागों में बाँटा जा सकता है सभी बोलियों में कुछ न कुछ लोक साहित्य मिलता है तथापि ब्रज, अवधी तथा बुन्देलखंडी का लोक साहित्य पर्याप्त रूप से विकसित है।

वस्तुतः लोक गीतों की रचना गाने के लिए तो होती ही थी, किन्तु उनके द्वारा जीवन की विभिन्न वृत्तियाँ भी व्यक्त होती हैं, अतः लोक गीतों के द्वारा हमारे समग्र-समाज का सही चित्र उपस्थित होता है।

उनके द्वारा कौटुम्बिक जीवन, श्रम—जीवन, सामाजिक आचार-विचार पर बहुत प्रकाश पड़ता है। इतना ही नहीं, तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों का भी बोध होता है।

उन्होंने विभिन्न प्रकार के लोक गीतों की व्याख्या करते हुए संकेत किया कि जीवन के प्रति आस्था, मोह एवं उत्साह का परिचय मिलता है।

वक्ता महोदय ने आगे कहा कि लोक साहित्य के रचयिता साधारण व्यक्ति ही रहे हैं पर उन्होंने जीवन को ओज, कला एवं सद्विचार से प्लावित कर दिया है।

विभिन्न देशों के लोक गीतों के तुलनात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसका उद्गम एक सा ही है। इसका मुख्य कारण यही है कि लोक गीत प्रकृति प्रेम एवं सहज जीवन से ही कण्ठों में अवतरित होते थे। हमारी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परम्पराएँ लोक साहित्य ही में सुरक्षित

भावपूर्ण एवं मार्मिक कुछ लोकगीतों की पंक्तियों के उद्धरण से श्री दास ने गीतों की उत्कृष्टता एवं तीव्र अनुभूति की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया।

[छ]

विषयों की विस्तृत तालिका

१—मनोरंजक साहित्य

१. लोकगीत एवं अभिनय
२. लोक-कथाएँ
३. साहित्यिक, सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय पर्वों पर साहित्य
४. छाया-नाट्य
५. विभिन्न प्रकार के खेलों पर साहित्य
६. विभिन्न प्रकार के मनोविनोदों पर साहित्य टिकट-संग्रह, कलापूर्ण वस्तुओं का संग्रह, घुड़सवारी, शिकार आदि
७. परिचय सहित सुन्दर चित्र
८. चित्र प्रधान कहानियाँ
९. हास्य एवं व्यंग्य
१०. चुटकुले
११. प्रहेलिकाएँ
१२. स्वस्थ एवं सुन्दर गीत, सरल संगीत

२—जीवनियाँ एवं साहित्यिक वृत्त

१. साहसी वीरों की कहानियाँ
२. राष्ट्र निर्माताओं की कहानियाँ
३. अन्वेषण की सरल कहानियाँ
४. काल्पनिक कहानियाँ
५. साहित्य निर्माताओं का जीवन चरित्र
६. धर्म प्रवर्तकों की कथाएँ
७. भक्तों की जीवन कथाएँ
८. वैज्ञानिकों की जीवन झाँकियाँ
९. सरल वीर काव्य

३—स्वच्छता एवं स्वास्थ्य संबंधी

१. स्वस्थ कैसे रहें ?
२. शरीर रचना
३. शरीर के अवयवों को स्वच्छ एवं स्वस्थ रखने की आवश्यकता एवं उपाय
४. गृह, पास-पड़ोस एवं गाँव की स्वच्छता संबन्धी समस्याएँ
५. छूत के रोगों से बचने और उनके निवारण के उपाय
६. साँप, विच्छू, ततैया आदि के काटने पर इलाज
७. खेल एवं व्यायाम सम्बन्धी साहित्य कबड्डी, कुश्ती, मुग्दर, दंड बैठक आदि
८. मादक-द्रव्यों—शराब, ताड़ी, अफीम, गाँजा, भाँग आदि से हानियाँ
९. तात्कालिक चिकित्सा संबंधी साहित्य
१०. खाद्य पदार्थों में मिलावट और उनकी हानियाँ
११. भोज्य पदार्थों के विटामिन का ज्ञान तथा सन्तुलित आहार-विहार का ज्ञान
१२. प्राकृतिक चिकित्सा
१३. घरेलू चिकित्सा
१४. विविध व्यंजन-निर्माण कला
१५. आदर्श गृह

१६. मातृत्व एवं शिशु-पालन संबंधी साहित्य
१७. सामान्य रोग और उनकी चिकित्सा

४—आर्थिक विषयों से सम्बन्धित साहित्य

(अ) कृषि

१. मिट्टी, बीज, खाद एवं कृषि यंत्रों संबंधी साहित्य।
२. पशु, नस्ल, पशु-पालन, पशु रोग एवं पशु-रक्षण संबंधी साहित्य
३. वनस्पति रोग एवं उनके निवारण के उपाय

(ब) कुटीर उद्योग एवं हस्तकला, कौशल

१. मधुमक्खी पालन
२. मत्स्य-उत्पादन एवं रक्षण
३. स्थानीय उत्पादन को दृष्टि में रखते हुए ऊन, रेशम, सन, मूंज, एवं जूट, बेंत, बाँस आदि की वस्तुएँ बनाने की शिक्षा देने वाला साहित्य
४. चर्म-उद्योग संबंधी साहित्य
५. बढ़ईगीरी

(स) अन्य

१. जीवन बीमा
२. अल्प बचत योजना सम्बन्धी साहित्य
३. सर्वोदय विचारधारा का साहित्य भूदान, श्रमदान, सम्पत्ति आदि भी
४. प्राविधिक शिक्षा संबंधी साहित्य

५—सामाजिक विषय

(क) इतिहास एवं भूगोल

१. ग्राम, जिला, प्रदेश एवं देश के इतिहास एवं भूगोल का सामान्य ज्ञान
२. देवी-देवताओं, रीति-रिवाजों एवं खेलों का इतिहास

(ख) नागरिक शास्त्र

१. पंचायत, ग्राम-सभा एवं सहकारी समिति आदि का ज्ञान
२. वोट का महत्व एवं चुनाव प्रणाली का ज्ञान

३. वाचनालय एवं पुस्तकालय के उपयोग के ढंग
४. प्रजातंत्र के मलभूत सिद्धान्तों का सरल शब्दों में ज्ञान
५. म्युनिसिपल बोर्ड, जिला बोर्ड तथा स्थानीय स्वराज्य सम्बन्धी संस्थाओं का ज्ञान
६. सामुदायिक योजना का ज्ञान
७. भारतीय संविधान का साधारण ज्ञान
८. प्रमुख राजनैतिक विचारधाराएँ
९. नागरिक के कर्तव्य एवं अधिकारों का विशेष ज्ञान

६—सामान्य ज्ञान

१. डाकघर सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान—मनीआर्डर करना, रजिस्ट्री करना, तार देना आदि
२. महाजनी हिसाब-किताब
३. वर्तमान आविष्कारों का ज्ञान
४. पंचवर्षीय योजनाएँ और उनका प्रतिकूल
५. देश-विदेश की प्रमुख ज्ञातव्य समस्याएँ
६. चिट्ठी-पत्री लिखने की शिक्षा
७. दर्शनीय स्थलों के वर्णन

७—नीति और धर्म

१. मानव-धर्म के मूल सिद्धान्तों का ज्ञान
२. सदाचार
३. शिष्ट-व्यवहार
४. लोकाचार एवं लोक-व्यवहार
५. हमारे तीर्थ स्थान
६. पौराणिक कथाएँ
७. सूक्तियाँ गद्य-पद्य
८. भक्तों एवं भक्त कवियों के प्रवचन

(८) सामाजिक समस्याएँ

१. अन्धविश्वास एवं रूढ़िवादिता
२. सामाजिक कुरीतियाँ—दहेज, बाल-विवाह, मद्य-पान, जुआ, बालकों में धूम्रपान आदि, मुकदमेबाजी चोरी डकैती, भिक्षा-

वृत्ति, अनैतिकता, छुआछूत, आवारागर्दी आदि, हानियाँ और उनके निवारण से सम्बन्धित साहित्य ।

३. स्त्री समस्याएँ : शिक्षा का अभाव, स्वास्थ्य एवं व्यायाम के प्रति उपेक्षाभाव, जीविका आदि के सम्बन्ध में आत्म-निर्भरता की कमी, पर्दा-प्रथा, मनोरंजन का अभाव, विधवा-समस्या, प्रसूता एवं प्रसूतिका गृह, बाल मनोविज्ञान की शिक्षा ।

४. परिवार नियोजन

५. रिक्त समय का सदुपयोग कैसे ?

६. कताई, बुनाई, सिलाई, कशीदाकारी आदि

७. लोहारी

८. धुलाई, रंगाई तथा छपाई

९. दरी कालीन, निवाड़ एवं आसन की बुनाई

१०. ईंटों की पथाई

११. मिट्टी के पात्र एवं खिलौने बनाने का काम

१२. लकड़ी के खिलौनों का काम

२३. स्थापत्य कला राजगीरी आदि

[ज]

गोष्ठी के सदस्यों द्वारा अभ्यास के लिए चुने गये नवसाक्षरोपयोगी पुस्तकों के शीर्षक

१.	श्री महेशचन्द्र गर्ग	झुकि जा रे बदरा
२.	श्री के० एम० वर्मा	सुक्खू के भाग जागे
३.	श्री शालिग्राम शर्मा	धीरे बहु नदिया
४.	श्री कन्हैया प्रसाद सिंह	वोट किसको दें ?
५.	श्री हरिनाथ उपाध्याय	एक बनो नेक बनो
६.	श्री विष्णुशंकर मिश्र	जब फुर्सत मिली
७.	श्री कुमारी गंगोत्री गर्ब्याल	चलो कैलास चलें
८.	श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया	जाग पहरुए
९.	श्री कांचीलाल गुप्त	महाभारत
१०.	श्रीमती स्वरूप रानी	माँ, बाप और बच्चे
११.	श्री शिवसिंह चौहान	बीमे के रुपये

१२. श्री शिवनाथ प्रसाद	सुखी गाँव
१३. श्री जे० एस० वार्ष्णेय	मनुष्य की कहानी
१४. श्री जगदीश स्वरूप सक्सेना	महाभारत की कहानियाँ
१५. श्री आत्मा राम नागर	चार मोती (पंचतत्र से)
१६. ,, जाहिर सिंह	धनदास
१७. ,, हीरालाल त्रिपाठी	प्रयागराज
१८. ,, रामबदनसिंह	संगति कीजै साधु की
१९. ,, मुरारि लाल शर्मा	ब्रजभूमि

[ग]

सञ्चालक, सहायक एवं प्रतिनिधि

सञ्चालक

श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, शिक्षा प्रसाराधिकारी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद। — २०६ ए, नया बैरहना, इलाहाबाद।

टोली नायक

१. श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, शिक्षा प्रसाराधिकारी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद। — ,,

२. श्री रामजीलाल बधौतिया, लेखक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद। — ५३३ ई, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

३. श्री पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी, प्रति उप-विद्यालय-निरीक्षक, इलाहाबाद। — ४६ ए, बाई का बाग, इलाहाबाद।

सहायक

श्री ब्रजभूषण शर्मा, प्राध्यापक, सेन्ट्रल पैडागॉजीक्ल इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद। — ८४, एलनगंज, इलाहाबाद।

कलाकार

श्री कमला शंकर सिंह, कलाकार, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद। — कलामंदिर दारागंज, इलाहाबाद।

प्रतिनिधि

१. श्री महेशचन्द्र गर्ग, सहायक अध्यापक, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, बुलन्दशहर।	किशोरभवन, मु० तेली-बाड़ा, बुलन्दशहर।
२. श्री कांचीलाल गुप्त, सहायक अध्यापक, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, एटा।	१२ मेहता पार्क रोड, एटा।
३. श्री शिवसिंह चौहान "गुंजन" सहायक अध्यापक, राजकीय दीक्षा विद्यालय, मैनपुरी।	बरिहा, पो० राम-नगर, मैनपुरी।
४. श्री मुरारिलाल शर्मा "सुरस", सहायक अध्यापक, राजकीय जूनियर प्रशिक्षण महाविद्यालय, आगरा।	लाडली कटरा, आगरा।
५. श्री जगदीश स्वरूप वार्ष्णेय, सहायक अध्यापक, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, मुरादाबाद।	मछुआपुरा, कटघर, मुरादाबाद।
६. श्री जगदीश स्वरूप सक्सेना, प्रवि उप विद्यालय निरीक्षक, जिला परिषद्, मैनपुरी।	२०७ चौथियाना, मैनपुरी।
७. श्री कन्हैया प्रसाद सिंह, प्रवि उप-विद्यालय निरीक्षक, जिला परिषद्, इलाहाबाद।	५१ तुलाराम का बाग, इलाहाबाद।
८. श्री शिवनाथ प्रसाद प्रवि उप विद्यालय निरीक्षक, जिला परिषद्, मिर्जापुर।	ग्राम० तुलाचक, पोस्ट गंगापुर, जिला वाराणसी।
९. श्री रामबदन सिंह, सहायक अध्यापक, राजकीय दीक्षा विद्यालय, आजमगढ़।	ग्राम० उमरी पोस्ट० चेवार, देव गाँव, जिला आजमगढ़।
१०. श्री आत्माराम नागर, प्रचाराधिकारी, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	द्वारा० पं० डी० आर० नागर, हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस, इलाहाबाद।

नवसाक्षरोपयोगी साहित्यनिर्माण गोष्ठी

बैठे हुए बाएँ से) सुश्री स्वरूप रानी, गंगोत्री गर्ब्याल, शकुन्तला सिरोठिया, सर्वश्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी (गोष्ठी-संचालक), बलवन्त सिंह स्याल (संयुक्त शिक्षा संचा… ब्रजभूषण शर्मा (निर्देशक), रामजीलाल बधौतिया (निर्देशक), पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी (निर्देशक), कमला शंकर सिंह (कलाकार)।

…ड़े हुए प्रथम पंक्ति) सर्वश्री मुरारिलाल शर्मा, 'सुरस', जगदीश स्वरूप सक्सेना, काँचीलाल गुप्त, हीरालाल त्रिपाठी, शिवनाथ प्रसाद, ज़ाहिर सिंह, रामबदन सिंह, कन्हैया… सिंह, कृष्ण मनोहर वर्मा, आत्मा राम नागर, अब्दुल रहीम खां।

द्वितीय पंक्ति) सर्वश्री शालिग्राम शर्मा, जगदीश स्वरूप वार्ष्णेय, प्रभुनारायण राय, शिव सिंह चौहान 'गुंजन', विष्णुशंकर मिश्र, राममणि त्रिपाठी, हरिश्चन्द्र श्रीव…

११. श्री जाहिर सिंह, मुख्य निर्देशक, समाज शिक्षा, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	५५ नई बस्ती, कीटगंज इलाहाबाद।
१२. श्री हीरालाल त्रिपाठी, मुख्य निर्देशक, समाज शिक्षा, प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	द्वारा : सुन्दर लाल द्विवेदी, १४७ चक, इलाहाबाद।
१३. श्रीमती स्वरूप रानी, प्राध्यापिका, राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद।	२० दिलकुशा, नया कटरा, इलाहाबाद।
१४. श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया, सहायक अध्यापिका, राजकीय शिशु शिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद।	६८ बी, बाई का बाग, त्रिवेणी रोड, इलाहाबाद।
१५. कुमारी गंगोत्री गर्ब्याल, सहायक अध्यापिका, राजकीय बालिका महाविद्यालय, अल्मोड़ा।	"साकेत" सेलाखोला, अल्मोड़ा।
१६. श्री हरिनाथ उपाध्याय, सहायक अध्यापक, किसान हाई स्कूल, बस्ती।	ए।६। ३५६, बोरिहवा बाग, बस्ती।
१७. श्री शालिग्राम शर्मा, सहायक अध्यापक, ऐंग्लो बंगाली इन्टर कालेज, इलाहाबाद।	गाँव:—उपड़ौरा पोस्ट सिकन्दरा, जिला:—इलाहाबाद।
१८. श्री कृष्ण मोहन वर्मा, सहायक अध्यापक, जगजीत इन्टर कालेज, इकौना, बहराइच।	कृष्ण निवास, शेख-अरूयापुरा, बहराइच।
१९. श्री विष्णुशंकर मिश्र, वितरणाधिकारी, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	१० महावीर लेन, इलाहाबाद।

प्रबन्ध

१. श्री राजनारायण सक्सेना, सहायक शिक्षा प्रसाराधिकारी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।	ममफोर्डगंज, इलाहाबाद।

२. श्री चन्द्रदत्त पसबोला, चलचित्रालया-ध्यक्ष, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	३ टैगोर टाउन, इलाहाबाद।
३. श्री योगेन्द्रनाथ राय, प्रधान करणिक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	१३२ लूकरगंज, इलाहाबाद।
४. श्री अब्दुल रहीम खाँ, गणक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	३६ ए, शिवचरन लाल रोड, इलाहाबाद।
५. श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, करणिक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	११०, ऊँचा मंडी, इलाहाबाद।
६. श्री प्रभुनारायण राय, करणिक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	८५५ अहियापुर, इलाहाबाद।
७. श्री हरिकृष्ण अग्रवाल, करणिक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	द्वारा--आई० टी० कारपोरेशन, २० त्रिपौलिया, इलाहाबाद।
८. श्री राममणि त्रिपाठी, करणिक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	११ अलोपीबाग, दुर्गाजी का मन्दिर इलाहाबाद।
९— श्री प्रभुदयाल करणिक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	५२३, मुट्ठीगंज इलाहाबाद।

[ब]

प्रतिनिधियों के अनुभव तथा रुचि को ध्यान में रखते हुए उन्हें निम्नांकित तीन टोलियों में विभाजित किया गया :—

१—भाषा और शैली

श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, गोष्ठी-संचालक एवं शिक्षा प्रसार अधिकारी, उत्तर प्रदेश।	टोली नायक
श्री महेशचन्द्र गर्ग	सदस्य
” जाहिर सिंह	सदस्य
श्रीमती स्वरूप रानी	सदस्या
श्री शालिग्राम शर्मा	सदस्य
श्री कृष्ण मनोहर वर्मा	सदस्य
” रामबदन सिंह	सदस्य
” कन्हैया प्रसाद सिंह	सदस्य-आख्याकार



गोष्ठी की प्रथम टोली—भाषा सम्बन्धित विचार विमर्ष करते हुए



गोष्ठी की द्वितीय टोली—विषय सम्बन्धित विचार विमर्ष करते हुए



गोष्ठी की तृतीय टोली—पुस्तक स्वरूप पर विचार विमर्ष करते हुए



गोष्ठी के सदस्य— पुस्तक परीक्षण हेतु—प्रौढ़ों के सम्पर्क में

२—विषय

श्री पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी प्रति उप विद्यालय निरीक्षक, प्रयाग।	टोली नायक
श्री जगदीश स्वरूप सक्सेना	सदस्य
,, शिवनाथ प्रसाद	सदस्य
,, हरिनाथ उपाध्याय	सदस्य
,, विष्णुशंकर मिश्र	सदस्य
कुमारी गंगोत्री गर्ब्याल	सदस्या
श्री शिवसिंह चौहान	सदस्य—आख्याकार

३—पुस्तक का वाह्य एवं आन्तरिक रूप

श्री रामजी लाल बधौतिया, लेखक, शिक्षा प्रसार विभाग, इलाहाबाद।	टोली नायक
श्री हीरालाल त्रिपाठी	सदस्य
,, आत्मा राम नागर	सदस्य
,, जगदीश स्वरूप वार्ष्णेय	सदस्य
,, कांचीलाल गुप्त	सदस्य
श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया	सदस्या
श्री मुरारि लाल शर्मा	सदस्य—आख्याकार

[८]

कर्णधार समिति—स्टीयरिंग कमेटी

श्री द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, गोष्ठी संचालक
,, ब्रजभूषण शर्मा
,, रामजीलाल बधौतिया
,, पृथ्वीनाथ चतुर्वेदी
,, महेशचन्द्र गर्ग
,, कन्हैया प्रसाद सिंह
,, काँचीलाल गुप्त
,, जगदीश स्वरूप वार्ष्णेय
श्रीमती स्वरूप रानी

श्री शिवसिंह चौहान
,, मुरारि लाल शर्मा

(ग) शब्द-संग्रह उपसमिति

१. श्री काँचीलाल गुप्त 'संयोजक'
२. श्री जगदीश स्वरूप वार्ष्णेय
३. श्री जाहिर सिंह
४. श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया
५. कुमारी गंगोत्री गर्ब्याल

(घ) सांस्कृतिक कार्यक्रम उपसमिति

कुमारी गंगोत्री गर्ब्याल
श्री जाहिर सिंह
श्री हरि नाथ उपाध्याय
" शालिग्राम शर्मा
श्रीमती स्वरूप रानी

(ङ) दैनिक पत्रक

श्री महेशचन्द्र गर्ग
" जगदीश स्वरूप वार्ष्णेय

(च) प्रतिनिधि नायक

श्री काँचीलाल गुप्त

(छ) खेलकूद

श्री जाहिर सिंह

(ज) सामान्य

श्री हीरालाल त्रिपाठी

—:०:—